नारी-मन

मूल्य पन्द्रह रुपये (15 00)

प्रथम संस्करण 1979 © दीप्ति खण्डेलवाल
NAARI MAN (Short Stories) by Dipti Khandelwal

नारी-मन

दीप्ति खण्डेलवाल

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

दो शब्द

मानव की एक सना के अन्तगत हाने पर भा स्त्री-पुरुष अपने अपन विशेषणा म नितान्त भिन हाते हैं एक जसे पचतत्वो से निर्मित उनके शरीर भी एक जसे कहा हाते हैं ? प्रकृति प्रदत्त उनके अगा म ही भिन्नता नही होती चेतना प्रदत्त उनक मानस भी भिन्न होते हैं। सवेदना की भूमि पर भी वे अलग अलग खडे होते हैं—स्थितियो की क्रिया एव प्रतिक्रिया म भी। उदाहरणाय मानव मन की एक कोमलतम तथा प्रबलतम सवेदना या चेतना प्रेम होता है। अनुभूति के स्तर पर प्रेम नारी और पुरुष म एक जसा स्पन्दित हा भी ले • किन्तु अपनी क्रियाआ एव प्रतिक्रियाओ म नितान्त भिन्न हो उठता है—जसे प्रेम पुरुष मे अधिकार बनता है नारी म समपण !

नारी मन म निहित य कहानिया नारी मन की कुहेलिकाओ के विभिन्न कोणा से अकित चित्र हैं। ये चित्र जैसे स्वय के नारी मन से साक्षात्कार के चित्र भी हैं और स्वय से साक्षात्कार भी कठिन नहा हाता ! फिर भी मैंने य चित्र अकित करने का यह साक्षात्कार करने का प्रयास किया है और नारी मन की हर कथा पात्र स तादात्म्य का भी। यह साक्षात्कार एव तादात्म्य अपनी विविधता एव गहनता म जीवन से जितना जुडा हुआ है उतना ही जीवन्त भी है—ऐसा मरा विनम्र विश्वास है।

इसी विनम्र विश्वास सहित अपने सुधी पाठको को ये कृतिया समर्पित हैं।

दीपावली 1977

—दीप्ति खण्डेलवाल

क्रम

बेहया

वह मुहल्ले मे ही नही शहर भर मे बदनाम थी।

स्त्रिया उससे जलती थी, उसके नाम पर थूकती थी, पुरुष उसे लोलुप नजरो से देखते, भौरो स मडराते—केवल रस की वासना से, उसे घेरते चखते थूक देते।

आप सोचेंगे—वह औरत थी पुरुषो द्वारा चखे और थूके जाने से उसे दद होता होगा पीडा होती होगी स्त्रियो द्वारा नाम पर थूके जाने से अपमान का बोध होता होगा

लेकिन, सच मानिए, उसे ऐसा कुछ नही होता था, न दद, न पीडा, न अपमान।

उलटे वह जरूरत पडने पर सुनाकर कहती—'वा साले हरामी! मुझपर क्या थूकेंगे! मैं ही उन्ह चखकर थूक देती हू साले कुत्ते लार टपकाते, पत्थर खाकर भाग निकलते है!

'और सुना री छिनाला! खबरदार, जो मेरा नाम लिया! तुम सब जो छुपाकर करती हो, मैं खुले आम करती हू बस तुममे मुझमे इतना ही फक है।'

सरकारी नल से पानी लेने वह सबसे पीछे आती। फिर लडती-झगडती, क्यू मे लगे कलसा, बालटियो को ठोकर मारती, बगैर प्रतीक्षा किए, सबसे आगे आ खडी होती। नल के नीचे रखे किसीके भी कलसे या बालटी गगर को पैर से ठोकर मारकर लुढका देती अपना गगरा नल के नीचे इतमीनान से टिकाकर, मजन करने लगती उसके गगरे भरते होते, इधर वह बत्तीसी चमकाती होती फिर और इतमीनान से अपने भरे कलसो को परे रखकर कुल्ले करती, कमर म खुसा लक्स टॉयलेट सोप निकालकर

मुह धोती साडी कसती जरूरत समझती तो ब्लाउज भी कसती। फिर एक कलसा कमर पर और दूसरा सिर पर टिकाकर पूरे इत्मीनान से लचकती चली जाती, दूसरा गगरा सिर पर धरवाने के लिए किसी न किसीसे हाथ लगाने का कहती तो औरतें नहीं कोई छैला ही आगे बढता—'इट्टी कलमो को हाथ लगवाएगी या वह भी न झिझकती, न बुरा मानती, न डरती—मर्द हो तो आ जाना !' कहती चली जाती।

फिर औरतें उसका नाम ले लेकर थूकती रहतीं, देर तक—'कम्बख्त पक्की बेहया है !'

हां वह सचमुच बेहया थी। उसने अपनी यह उपाधि' पूरी बेहयाई से स्वीकार भी कर ली थी—बिना किसी अफसोस के, बिना किसी हिचक के, बगैर किसी हया के।

वह सुदर नही थी, इतनी आकर्षक भी नहीं कि भौंरो को सरलता से आकृष्ट कर सके। भौरो को पटाने के लिए उसे सतत प्रयास करना पडता था। हा, यौवन उसम भरपूर था। उसके श्याम मुख या श्यामल गात पर आखें टिकें न टिकें उसके उन्नत वक्ष पर अवश्य टिक जाती थी। जिन्हे वह पारदर्शी ब्लाउज म, बाजार की बनी सस्ती 'ब्रा' म और उभारकर रखती। आचल को वक्ष पर सम्भालती कम, ढरकाती ज्यादा। छोटी छोटी आखो मे काजल भरे कटाक्षों के कामुक आमन्त्रण के तीर साधकर चलाती। पान ऐसे खाती कि मोटे मोटे होठ तक सुख लाल हो उठते। उसे सस्ती लिपस्टिक पाउडर क्रीम आदि लीप पोतकर सजना भी आता था—वसे सौन्दर्य के ये उपकरण उसे हास्यास्पद ही अधिक बना जाते थे—श्याम वर्ण पर गुलाबी 'पौडर, होठो के कोनो से भी अधिक फैलाकर पोती गई सुख 'लाली (लिपस्टिक), आखो मे इतना काजल कि आखें काजल की डिबिया हो उठें। फिर वह शोख रगो की सस्ती साडिया पहनकर पूरी अभिसारिका बनी,

अपनी कोठरी की खिडकी से सटकर खडी हो जाती या तिपाई पर बैठी, खिडकी पर कुहनी टेके, निस्सकोच चितवन के मादक तीर चलाया करती। कोई सीने पर हाथ मारता तो वह मुस्कराकर अपने होठ काटने लगती। कोई आख दबाकर अश्लील इगित करता तो वह भी आचल ढरकाती, भरपूर अगडाई लेती। वे ही हार मान जाते वह हार नही मानती थी और कोई होती तो मुहल्ले मे टिकने नही दी जाती या टिक न पाती। लेकिन उसके मुह लगने से मुहल्ले वाले घबराते थे। इट के जवाब मे पत्थर उठाए वह तयार रहती दो की चार सुनाती औरतो से हाथापाई पर उतर आती मर्दों से खुलकर गाली गलौज करती।

हा वह एकदम बेहया थी। वैसे उसका नाम चदा था। लेकिन 'अरे वो चन्दा वा बेहया !' सब एक स्वर से कहते, उसे बेहया 'उपनाम' दे चुके थे। अपने इस 'उपनाम' से वह बेखबर भी नही थी, किन्तु उसके अस्तित्व के चिकने घडे पर से सब कुछ फिसल जाता था, उसके आचल की तरह। वह आचल को सिर पर टिकाकर अपने मेहनत से रच-रचकर गूथ गए नित नय जूडे को छिपाना ही कहा चाहती थी? अपनी बेहयाई को स्वय अपने जूडे-सा उघाड उघाडकर दिखाती वह स्वीकार कर चुकी थी।

वैसे, वह ब्याहता थी। मुहल्ले के पनवाडी लालचद की तीसरी 'जोरू'। लालचद और चदा की आयु मे लगभग बीस वष का अतर था—'इत्ती बडी तो इस जनखे की बेटी होती, अगर पैदा करता! इस मुए ने मेरी जवानी बरबाद की! कमीने मेरे बाप ने इस हरामी के हाथ बेचा अपना बुढापा आबाद किया! अरे, एक मुए ने बेचा, दूसरे ने खरीदा मारी तो गई मैं !' चदा चिल्ला-चिल्लाकर मुहल्ले वालो को सुना चुकी थी। लालचद पहले उसे मारता पीटता था। फिर जाने क्या हुआ, लालचद की पान लगाते समय की झुकी गदन हमेशा झुकी रहने लगी थी। सामने पान की दुकान थी, पिछवाडे एक कोठरी। दुकान से कोठरी म वह दो

समय रोटी खाने जाता, रात को सोन। शेष समय चुपचाप पान, सिगरेट, लेमनचूस बेचा करता। लोग बाग भी सुना सुनाकर फब्तिया कसते चुप हो गए थे—'जोरम जोर जुरौरा, ये नकटी वे बौरा ! साले दोनो बेहया हैं हजिडे की लुगाई हरजाई !'

हा, हा हिजडे की लुगाई हरजाई। चलो तुम हरामियो को ठीक समझ तो आया !' लोग बाग चुप हो गए, चन्दा स्वय ही चीखने लगी थी— हिजडे की लुगाई हरजाई ?'

फिर जाने क्या चमत्कार हुआ ! चन्दा ने ब्याह के पूरे सात साल बाद बेटा जना। 'जाने किसके साथ मुह काला किया है ! जाने किसका पाप है !' लोगो की जबानें एक बार फिर चीखने थूकने लगी।

जवाब मे लालचन्द का सिर और झुक गया, लेकिन चन्दा और प्रचड हो उठी—'अरे, अपने अपने गिरबान मे झाककर देखो न कि किसका पाप है या मैं ही तुम्हारे नाम गिनवाऊ ? फिर तुम्हारी अम्माए या जोरूए तुम्हे जिन्दा रहने देगी ? बोलो, गिनवाऊ नाम ?

बाप रे ऐसी बेहया तो न देखी न सुनी !' कहते मर्द ही नही, औरते भी चुप हो गई।

लेकिन, जब बच्चा धीरे-धीरे साल भर का हुआ तो शक्ल सूरत से बिलकुल लालचन्द हो उठा। वैसा ही मरियल, वैसा ही घिनौना भी। 'भाई चाहे वो बेहया कित्तो के साथ भी सोई हो, बच्चा जरूर लालचन्द का है।' लोगो ने स्वीकार कर लिया।

प्रकृति के नियमानुसार बच्चा समय के साथ बढने लगा। चन्दा जैसी थी वैसी ही रही आई। चन्दा पर न पत्नीत्व हावी हो पाया था न मातत्व हो सका। हा, वह बच्चे को साफ सुथरा रखती। अपनी आखो के साथ उसकी आखो मे भी काजल आज देती। ढेर सारा तेल लगाकर, अपना जूडा गूथती, तो तेल सने हाथो से शिशु का सिर भी चुपड देती। लक्स साबुन से जितनी बार अपना मुह धोती उतनी बार उस बच्चे का भी। स्वय पौडर लगाती,

तो बच्चे को भी पोत देती। दिन मे दो बार अपनी साडिया बदलती तो इन सब अत्याचारो के लिए चीख-पुकार मचात, शिशु को धप् जडती, उसके झबले, कुरते भी जरूर बदलती और जीवन मे पहली बार उसने स्वेटर बुना, उसी 'चाटे' पाते शिशु के लिए, जिसे एक स्तन पी चुकने के बाद वह घसीटकर दूसरे स्तन से लगाती बडबडाया करती— मर, पी ले निगाडे! तो छाती तो हलकी हावे। मार इत्ता दूध कहा से फट पडा है इन छातियन मे, भगवान ही जानें।' भगवान का नाम भी चन्दा की जबान पर एक गाली-सा ही बनकर आता। वरना 'भगवान से ता डर!' कहने वालो को वह सुना चुकी थी— काहे डरू? ये तुम्हारे भगवान थानदार ह क्या जो हथकडी लगवाय देंगे! अरे, मुओ! तुम अपनी फिकर करो सरग जाने की चन्दा को तो ई दुनिया म भी नरक मिला है, ऊ दुनिया मे भी मिलेगा चलो, अपना तो नरकई भला!' दुनिया के साथ स्वग और भगवान को भी ठेंगा दिखाती चन्दा ने एक चुनौती देता-सा गाना और सीख लिया था—

भगवान दो घडी, जरा इन्सान बन के देख
दुनिया मे चार दिन जरा मेहमान बन के देख!'

चन्दा ने अपने बटे का नाम रखा—अशोक कुमार। वह अशाक का 'असोक' कहती या कह पाती। असोक कहता, आवाज देती, रोमाचित हो उठती—'और नहीं तो क्या, बुढऊ लालचन्द के बेट का नाम मूलचन्द धरू! अरे मेरा बेटा तो असाक है—असाक कुमार! न इसे पनवाडी बनने दूगी ये तो उचा अफसर बनगा, अफ्सर! देख लेना हा '

और चन्दा ने सचमुच अशोक का एक अच्छे प्राइमरी स्कूल मे भरती करवा दिया। बढते खच के एवज मे वह भी खुले आम शहर के बिगडे रईस घनश्याम की रखल बन गई। शाम को सेठ घनश्याम दास की मोटर सप्ताह मे एक या दो बार आती। चन्दा साझ ढले जाती, रात गए आती। आती तो उसके कदम लडखडाते होते शराब

के नशे म जूडे म चमेली का गजरा महकता हाना बदन पर कीमती साडी होती कमर म खुसा बटुआ नोटा से भरा हाना और वह गाती होती—'सैया भए कातवाल, अब डर काहे का हा र। डर काहे का !' सचमुच मुहल्ले वाले अब चदा स टरन लग थे—सेठ घनश्याम दास जी की हैसियत, ज़ोर, प्रभाव के कारण।

'अरे बाबा ये चदा तो सच्चई अकास पर चढ गई ! अब न मुह खोलो भैये, नही तो चदारानी 'अदर' करवाय देगी कोतवाल सैंया जो फासा है ! सुना नही कसे झूमकर गाती है—सया भए कोतवाल हमे डर काहे का !' और चन्दा के गाने की आवाज जितनी ऊची हाती गई, मुहल्ले वालो की आवाजें उतनी नीची होती गइ, बन्द-सी हो गई।

इस बीच लालचद को लकवा मार गया था। पान की दुकान बद हो गई थी। और अशोक बारह वप का हो चला था। चदा उसे देहरादून के स्कूल मे भेज देना चाहती थी—वही के बोर्डिंग म पढा लिखाकर 'आदमी बनाने के लिए—इस मुहल्ले के कजडो के बीच तो लौंडा बिगड जाएगा ई हरामी क्या उसे आदमी बनन देंगे !' चदा ने सेठ घनश्यामदास के जरिए अशोक का देहरादून भेजने का इतजाम कर लिया था।

अशोक के जान का दिन था। चदा उसके कपडे लत्ते सहजकर सदूक मे बद कर रही थी आखा मे आसू लाती नही सदा की भाति अपने बेहया गीत गाती— सिपहिया जालिम ! सारी सारी रात सोव न देवे हाय रे ! साव न देव !'

सहसा गली मे शोर मच गया चदा न खिडकी से झाककर देखा, अशोक मुहल्ले मे गुडे लडके कल्लन स गुथ गया था, मार खा रहा था, मार भी रहा था कल्लन के एक जबदस्त मुक्के के प्रहार स अशोक खून उगलने लगा। चदा दौडी एक पत्थर उठाकर कल्लन को दे मारा—'साले ? तेरी ये मजाल ! सात साल की पिसवा दूगी।' कल्लन भाग गया। चदा बेहोश से अशोक को कोठरी मे उठवा लाई आचल से मुह से बहता रक्त पोछ, दूध

गरम करके पिलाया दौडकर मुहल्ले के वैद्यराज स दवा लाकर पिला दी—'लेकिन अशोक ! तर दम तो है नही र। डेढ पसली का है उस मुए कल्लन स का भिट गया र !' च दा न अशाक स पूछा।

अशोक न अपनी दद और आसुआ से लाल आखें खोलीं—'कल्लन तुम्ह गाली दे रहा था मा। उसने तुझे उसने तुझे' अशाक उत्तेजना से कापने लगा था—'उसने तुझे छिनाल कहा मा। वेहया कहा बापू को भी गाली दी तो मैं सह गया लेकिन तरी गाली नहीं सहूगा । अच्छा मा, तू ही एक बार कह दे कि तू वेहया नही है—मैं मान लूगा, चाह फिर हर कोई कहता रह।'

और अशाक के प्रश्न के उत्तर म 'वेहया' च दा पहली बार आचल मे मुख ढापकर फट फटकर राने लगी थी।

अपराजिता

'खासी ठण्ड पड रही है इस बार मियेटल मे भी 'कहता हुआ वह अपने कीमती ओवरकोट का कालर ऊचा कर लेता है—खूब सजता है यह काला ओवरकोट उसपर ! स्टटस म चार वष स है। प्राय लोग उसके लालिमा लिए गोरपन, ऊचे कद किन्तु काली आखो व काले बालो को देखकर पूछत थे—'आर्मेनियन ?' वह हसकर उत्तर देता था—'नो, इडियन ! आइ कम फ्रॉम इडिया !' ऐसे प्रश्नकर्ता पुरुष उससे शेकहड करत प्राय इतना कहकर चुप हो जाते—बट, यू डोट लुक एन इडियन !' किन्तु महिलाए विशेपत युवतिया, उससे यह प्रश्न पूछकर चुप न होती। आखें गडा गडाकर उसे देखती, प्राय उससे एक शाम साथ गुज़ारने की माग कर बैठती। उसे भी यदि वह फ्री' होता तो कोई आपत्ति न होती—विशेपत 'वीकएड' के समय म, अर्थात् शनिवार की शाम से सोमवार की सुबह या रविवार की रात तक।

वसे भीड भाड, पिकनिक, पिक्चर या ब्लू फिल्म्स' तक म उसे विशेप दिलचस्पी नही थी। भीड मे वह और भी अकेलापन महसूस करता था और 'ब्लू फिल्म्स' की नग्नता उसे उत्तेजित नही कर पाती थी बल्कि उदा सा देती थी यानी उत्तेजनाओ के साधन उसके रक्त को और गरम करने के बजाय, और सद ठण्डा कर देते थे और ऐसी वर्फीनी ठडक से उबरन के लिए उसे बार बार ब्राडी पीनी पडती थी वह पीता था तो शरीर मे गरमी दौडने के साथ चेतना के वे सद एहसास भी नामल रूप मे गम हो जाते थ—हा 'नामल'— जस्ट नामल' बस एक 'ऊब का एहसास' था, जो इस सारी गरमी को नकारकर और गहरा हाकर रह जाता था ।

जूली, क्रिस्टीना, सिल्विया और सुनीता—ये चार युवतियां इस दौरान उसके काफी निकट आइ। इनम जूली सबसे 'फास्ट' थी—शायद अमरीकी होने के कारण। उसकी नीली आखा म शाले भडकते रहते सुडौल गोरी पिंडलिया, जाघ तक उघडे कसे स्कट-ब्लाउज मे ढके से अधिक खुले उसके मोहक उभार उसके नप-तुले नाचते-से कदम नशा सा बिखेरते रहते । वह 'माडल गल' थी—किसी दिन मरिलिन मनरा बनने के सपन देखा करती थी। आर सुनीता उन चारो म सबसे अधिक डल' थी—शायद 'इडियन' होन के कारण। रिसच के सिलसिले मे फैलोशिप के बूत पर वह स्टटम आइ थी। आखें और बात तो उसके भी बेहद काल' थे, किन्तु वण सावला था, बगाल के पानी की सावली स्निग्धता लिए। अत सुनीता के 'इडियन' न होने का भ्रम किसीको नही होना था।

जूली की नीली आखा म भडकते शोले की तुलना म सुनीता की गहरी काली पनीली सी आखा मे किसी ठडी आग का सा आभास होता प्राय वह मन ही मन जूली और सुनीता की आखा की तलना किया करता जूली की बेबाक उद्दाम पारे सी चचल दृष्टि आर सुनीता की शात, स्थिर, पल भर उठकर झुक जान वाली चितवन ! जब बताइए सुनीताजी आई है स्टेटस म नकिन उठती-झुकती चितवन का इडियन टड माक लगाए घूमती ह दीज इडियन गल्स आर जस्ट फुलिश ! वह स्वय से कहता। सुनीता से परिचय के दौरान म, सुनीता के बारे मे उसकी यह राय निरतर पक्की होती गई थी—दीज इडियन गल्स आर जस्ट फुलिश ! '

जूली न जब उसे पहली बार सुनीता के साथ देखा, तो चीख पडी थी—यू चीट ! बात सिफ इतनी थी कि वह सुनीता का हाथ का सहारा देकर कब से उतार रहा था। सुनीता को तेज फ्लू हो गया था और एक ही एपाटमट के अलग अलग कमरो म अलग-अलग ठहरे हुए व, इडियन होने के नाते, कुछ निकटता महसूस करने लग थे और पुरुष होन के कारण उसने सुनीता की अस्वस्थता

को देखकर केयर' देनी चाही थी, मुनीता के अस्वस्थ क्षणा व नारीत्न का जरा सा महारा देना चाहा था—वह भी सुनीता की खातिर नहीं, अपने किसी 'इगो' की तुष्टि के लिए। उसका वह इगो जूली के सानिध्य क क्षणो म उद्दाम वेग से भडकता आकठ तप्त भी होना पर तुष्ट नही हो पाता जूली उससे बार बार कहती, 'डियर मी ! यू आर जस्ट वन्डरफुल । इफ आइ एवर मैरी, आइ शैल मरी ओनली यू

जूली की शोलो सी भडकती नीली आखो और सुनीता की धीमी धीमी सुलगती ठडी आग लिए पनीली सी आखो की तुलना के बीच वह तप्ति और 'तुप्टि शब्दो क अर्थो की तुलना भी करने लगा था—उसे लगने लगा था कि 'तप्ति और तप्टि क शाब्दिक अर्थ चाहे एक हो उनक वास्तविक अर्थों म कोई अतर अवश्य है और इस अतर को सुलझाने की चेष्टा मे वह और उलझकर रह जाता था।

सुनीता को बाह का सहारा देकर उतारते देखकर जूली पतली तेज आवाज मे चीखी थी—'यू चीट !' सुनीता लडखडा गई थी। एक आहत सा भाव उसके मुख पर तुरत उभर आया था—'म खुद कमर तक चली जाऊगी लिफ्ट भी तो है आप उसके साथ चल जाइए शायद आपकी गर्लफ्रेंड है बुरा मान रही है।

उसे भी शरारत सूझी थी—जूली को जलाने के लिए उसने सुनीता की बाह और कमर थाम ली थी सुनीता को घेर घेरे चलने लगा था, जूली को 'वेव' करते मुस्कराकर कहा था—'शल सी यू अगेन !'

'नाट अगेन ! यू चीट !' जूली ने फिर चीखकर कहा था।

शी इज डिफाइनिग हरसेल्फ नाट मी। डोट केयर आप मेरे साथ ही चलिए। वह जूली को 'वेव' करता सुनीता के कधे पर झुककर कहता मुस्कराता, इत्मीनान से सुनीता के साथ उसके रूम तक गया था फिर उसने और सुनीता ने पहली बार साथ-साथ काफी पी थी—थक यू थक यू वेरी मच मिस्टर अहूजा फॉर युवर काइड

हेल्प !'' सुनीता ने अमरीकी धन्यवाद के ढग मे इडियन ढग से ही कहा था—अर्थात् बेबाक दृष्टि उठाकर नही सकाची पलको को झुकाकर ही ।

फिर, जब एक बार न्यू फिल्म' देखकर भी वह गरम न हुआ जितना होना चाहिए था, तो उसके पहलू म बेहद गरम, उत्तेजित हो उठी जूली ने कसकर उसकी बाह पर चिकोटी काटी—'तुम्ह किसी साइकाएट्रिस्ट को कन्सल्ट कर लेना चाहिए, जल्दी !''

'सच क्या ! अच्छा चलो, हज क्या है ?' वह स्वय को समयाता *चुझाना एक अनुभवी वृद्ध अमरीकी साइकाएट्रिस्ट के पास ले गया ।* साइकाएट्रिस्ट डॉक्टर ने अपनी दृष्टि से, दृष्टिकोण से उसको पूरा चेक किया, नकली दाता वाली एक असली सी हसी हसत बोले—'यू आर ए पिक्चर ऑफ हेल्थ माई बाय ! तुम्हारी ''ट्रबल' तुम्हारे शरीर म कही नही, तुम्हारे दिल दिमाग म है यू आर एन इन्टले-क्चुअल ! सो, द ट्रबल लाइज हियर, नाट हियर !' डाक्टर ने 'द ट्रबल लाइज हियर' कहते हुए हसकर उसके हृदय और मस्तक को तर्जनी से छुआ—'नॉट हियर' कहत उसका पेट थपथपा दिया—'गो एड एन्जॉय लाइक कैशिंग द मोमेन्टस एड वेविंग द रेस्ट !'

'कैशिग ऑर कैचिंग व्हाट डू यू मीन डाक्टर ?'

'कैशिग' वृद्ध डाक्टर ने बिलकुल स्पष्ट, बेबाक लफ्जो मे ज़ोर से हसकर कहा । 'नेक्सट पशेन्ट ! ओ० के०, चीयस !' और वे दूसरे मरीज को देखने लगे थे ।

'कैशिग' अर्थात सिक्को मा भुनाना और 'कैचिंग' अर्थात पकड लेना क्या जिन्दगी के लम्ह सिक्का जस भुनाए, खरीदे बेचे और खच किए जा सक्त है ?—हा, जसे आप कोई 'चीज' कोई भी 'जरूरत' खरीदते ह, क्या जिन्दगी भी केवल सिक्का जसे स्थूल लेन दन म खरीदी और बेची जा सकती है ? वेविग द रेस्ट अर्थात स्थूलता के नेपथ्य म किसी भी सूक्ष्मता को उपेक्षित कर या नकारकर, भुलाकर ? 'कैचिंग' तक तो गनीमत थी, यानी कि जीवन के कुछ क्षणा को 'पकडने मे', आलिगनबद्धता जसे किसी पाश

म जकडने म भी, कुछ तो मानवीय चेतना के स्तर से भी जुड सकता था किन्तु 'कचिंग' रानेट एज से जेट एज तक पहुचकर 'कशिंग' बन गया है—अमरीका इगलड जैसे अति सभ्य, सुसस्कृत, समृद्ध, धरती से निरतर आकाश की ओर उठते देशो का यह 'कशिंग लाइफ' 'एन्जॉय लाइफ', 'कैशिंग द मोमेन्टस एड वेजिग द रेस्ट' आधुनिकतम जीवन दर्शन बन गया है—बिलकुल नकद हिसाब जैसा न कोई उधार न कुछ आगे न पीछे वह बिलकुल समझ गया था—वृद्ध साइकाएट्रिक डॉक्टर न उसे सामने आ खडे क्षणो को सीधे सीधे भोग लेने का 'एन्जॉय' कर लेने का जीवन दर्शन समझा देना चाहा था—नौ नकद न तरह उधार' जैसा सीधा, गणित के जोड-बाकी जैसा जीवन-दर्शन !

फिर कशिंग' और 'कचिंग' क सन्दर्भ म जूली और सुनीता उसकी आखो म और भी उभरने लगी जूली उसके पहलू को कई बार गरम कर चुकी थी सुनीता की आखो की ठडी आग उसके 'सद एहसासो' को और भी सद करके छोड देती थी जूली के साथ बिताए क्षण रगीन होते थे सुनीता के साथ अगर वह कुछ क्षण बिताना चाहता तो उनका क्या रग होगा ?—वह सोचता रह जाता था ।

वह दो वष से स्टेटस मे था । सुनीता दो वष पश्चात् आई थी । चार छह महीने तो उनके बीच केवल एक अपाटमट के अलग अलग कमरो मे रहने का, औपचारिक सा रिश्ता रह आया हैलो, हाउ डू यू डू' कहते व औपचारिक ढग से एक दूसरे के पास म गुजर जाते । सुनीता बहुत चुप रहती वह बहुत बोलने का स्वभाव होने पर भी सुनीता की चुप्पी के सम्मुख जाने क्यो नि शब्द हो उठता उह ! ऐसा है भी क्या उस लडकी म ? जस्ट एन एवरेज टाइप इडियन गल ! नो डाउट ब्रिलिएट !' सुनीता के रिसच पपर उसने देखे थे—सिम्पली ब्रिलिएट ! उसके होठो से बरबस निकला था। थक्स' कहती सुनीता की आखो म उसके काम्प्लिमेटस भी कोइ

प्रतिक्रिया नही जगा सके ये इस लडकी का भी साइकाएट्रिस्ट को दिखाना चाहिए—उसने चरलाकर अपने आपसे कहा था किन्तु सुनीता से कुछ भी कहने का साहस पता नही उसे क्यो नही हो पाता था। 'लेट हर गो टु हेल। कहता वह सुनीता के बारे मे जितना कम सोचना चाहता उतना ही अनजाने, बरबस ज्यादा से ज्यादा सोचन लगा था और अस्वस्थ सुनीता को सहारा दते, जूली की 'यू चीट' के प्रत्युत्तर म 'शल सी यू अगेन' कहते, जब वह सुनीता की फ्लू मे तपती दह को बाहो म घेरकर उसके कमर तक लाया था, तो उसे लगा था—जाने कैसे सुनीता और उसके बीच का फासला काफी कम हो गया है अचानक।

फिर उसने सुनीता से उसके व्यक्तिगत जीवन के बारे मे पूछा था, 'इफ यू डाट माइड टेलिंग मी एबाउट युअरसेल्फ ' (यदि आपको अपने बारे मे मुझ कुछ बताने म आपत्ति न हो तो)उसने कहा था।

वह शनिवार की एक शाम थी। बाहर वफ गिर रही थी। एयर कडिशन के कारण कमरे का तापमान सुखद रूप स गरम था।

सुनीता के कमरे का। उसके अपने कमर का तापमान तो एयर कडिशनर के बावजूद उसे सुखद नही लग रहा था। उसने ब्राडी भी पी थी फिर भी जब बाहर गिरती वफ, उसके भीतर भी गिरन सी लगी थी तो वह घबराकर, पहली बार सुनीता के कमरे मे आया था—आपके साथ कुछ समय गुजार सकता हू ?'

'यू आर मोस्ट वलकम !' कहती सुनीता कॉफी बनाने लगी थी। काफी बनाती सुनीता की स्थिरता को देखते वह अस्थिर होन लगा था—अजीब है यह लडकी भी ! ऐसी खूबसूरत भी नही कि इस अपनी खूबसूरती का कोई गुमान हो। फिर क्या है इसमे अपराजेय जैसा कि वह उसके सम्मुख पराजित सा होकर रह जाता है उन क्षणो का पराजय बोध उसके भीतर इतना प्रबल हो उठा था कि वह किसी भाति सुनीता की अपराजेयता को आजमाना चाहने

लगा था ।

'वहा, इडिया म आपके परिवार मे कौन कौन है ?' उसने सहज होने की भरपूर काशिश करते हुए पूछा था ।

'ममी पापा, दो भाई और दो बहनें और मैं क्यू मे लास्ट हू ।' सुनीता हल्के से मुस्कराई थी वही अपराजेय सी मुस्कान कि वह और जल गया था। इसका नाम तो 'अपराजिता' होना चाहिए था । कुछ भी तो विशेष नही है इस लडकी मे फिर क्यों वह उसके सामने हार हार जाता है ? स्वय से कहता हुआ वह आखे गडाकर सुनीता को काफी सिप करते देख रहा था। सुनीता कभी खिडकी से वाहर देखती कभी उसकी आर कभी किसी ओर नही प्रकट मे वह बिलकुल शात थी सुस्थिर क्या अप्रकट म भी यह लडकी ऐसी ही है—जानकर रहूगा उसे जिद चढने लगी थी ।

'मिम सुनीता, आप बुरा न माने तो आज अपने बार मे कुछ बताइए, साफ साफ एक दोस्त के नात पूछ रहा हू मेरा और काई मतलब नही है ।' उसने अपनी कापती आवाज के कपन को छिपात हुए कहा था ।

सुनीता के होठ हल्के से कापे थे उसने लक्ष्य किया आर सुनीता ने अपने होठो के कपन को छिपाने का कोई प्रयास भी नही किया था—'मेरे आमपाम कुछ भी विशेष नही ह मिम्टर अहूजा आइ एम जस्ट एन आडिनरी गल, विद एवरिथिंग जस्ट आडिनरी एराउण्ड मी । (मै एक साधारण लडकी ह और मेरे चारा आर भी सब कुछ साधारण है ।) हा स्टेट्स आइ हू—बस, शायद एक यह वात आडिनरी नही है। और वह खुलकर हस पडी थी— एक निरभ्र मी हसी जसे उस हसी म किमी छल का काई बादल न हा निरभ्र नीले आकाश से हल्की किरणो-मी वरती हसी थी वह

अमरीका म रहत वह ऐसी निरभ्र हसी किसी युवती के निर्लेप हाठो पर देखने के लिए तरस-मा गया था । क्रिस्टीना और सिल्विया

ठहाके लगाती थी। जूली हसती भी थी तो, पतली तेज़ आवाज़ में चीखती सी और उन विदेशी युवतियों के होठ 'निर्दोषता' के नाम पर और हम पडत थ— आर वी किड्स टु बी इनोसेंट ? वी नो व्हाट लाइफ मीन्स।' (क्या हम नन्ही बच्चियां हैं जो मासूम हो ? हम जानती हैं ज़िन्दगी का अर्थ क्या होता है ।) जूली न तो खुल-कर व्यग्य किया था— इनोसेंट ? तुम हमें निर्दोष देखना चाहते हो ? दिस इज़ नथिंग बट युअर फुलिश इंडियन इनहिबिशन ।'' भ वी ' कहता वह इनोसेंट' (निर्दोष) शब्द की कोई परिभाषा सोचता रह गया था—भारतीय और विदेशी युवतियों के सदभ म किन्तु सोच नहीं पाया था।

शायद आप नहीं जानतीं कि आपकी साधारणता ही आपकी असाधारणता है वह सुनीता को निर्निमेष देखता अचानक कह गया था।

सुनीता ने उसकी निर्निमेष दृष्टि के सम्मुख पलकें झुका ली थीं साड़ी का आंचल उंगलियों पर उमठन खोलने लगी थी— शायद यह आपकी गलतफहमी है ! मैं बिलकुल साधारण हू एड आइ नो एबाउट माइसेल्फ कि मैं क्या हू—क्या नहीं। सुनीता का स्वर मदु नारी स्वर था हल्का मीठा गुंजन। किन्तु उसे लगा था— सुनीता के स्वर म कोई वजन है और उस 'वज़न' को तोल पाना कठिन है।

आप गाती तो होंगी ? बंगाल की हैं। सो सुनाइए कोई रवीन्द्र संगीत आपकी आवाज़ काफी मीठी है।

लेकिन आप तो पंजाबी हैं, आपको बंगला कहा समझ म आएगी ?' सुनीता फिर मुस्कराई थी।

'लेकिन रवीन्द्र संगीत समझ म आ जाएगा यू नो इट्'ज़ यूनिवर्सल ! आइ मीन द ब्यूटी आफ एनी ट्रू आर्ट हैज़ यूनीवर्सल अपील !'' (किसी सच्ची कला के सौन्दर्य म सार्वभौम आकर्षण होता है।)

फिर सुनीता बिना किसी नखरे के गाने लगी थी—कोई बंगला

गीत वैसे ही आचल को उमेठती खालती, पलकें मुकाती या उठाकर भी किसी ओर न देखती थी।

सुनीता कब तक गाती रही, कब चुप हुई उसे पता नहा लगा। वह स्वर के परे, सुनीता के परे कहीं खो गया था कि धम धम करती जूली आ गई थी— सो यू आर हियर कम आन!' कहती उसे घसीट ले गई थी।

'आपको जूली का मिसबिहेवियर बुरा नही लगता ? क्षमा याचना-सी करत उसने सुनीता से पूछा था।

नहीं तो। उसका आपपर जो अधिकार है, उस अधिकार का वह आपपर प्रयाग करती है तो मुझे क्यो बुरा लगेगा ?' सुनीता सहज थी। वह और असहज हो गया था— वाकई किस मिट्टी की बनी है यह लडकी कि इसको समझ पाना ही मुश्किल है ?

उसके बाद वह जूली क गरम आलिंगना मे और सद होने लगा था और सुनीता का कोइ भी 'एहसास' होते ही उसका वक्ष जार जोर स धडकन लगता था यद्यपि सुनीता और उसके बीच के 'एहमाम' खामोश थे। उसे इस खामोशी को तोडन की जिद-सा चन्न लगी। आखिर क्या है इस साधारण-सी, सावली बगाला लडकी म कि वह उसके सम्मुख बिना लडे ही हारने-सा लगता है लेकिन कृष्णकात कभी नही हारा हारेगा भी नही उसक 'डाइनमिक व्यक्तित्व के आकषण से तो भारतीय से लेकर यूरोपियन लडकिया तक खिंची चली आती रही है बस, यह सुनीता ही

जम किसी फैसल के लिए उसने एक शाम सुनीता के लिए रिज़व कर ली। जूली से कह दिया कि वह काम स बाहर जा रहा है, अगले सप्ताह लौटेगा। 'तुम्हारे साथ वो काली लडकी भी जाएगी क्या ?' जूली फोन पर चीखी। उसने बिना उत्तर दिए रिसीवर रख दिया, निश्चय कर लिया था कि अब वह जूली के हाथा सुनीता को अपमानित नही होने दगा।

उसने दिन म ही सुनीता से 'फिक्स अप' कर लिया था कि वह

एक शाम शांति मे सुनीता की कम्पनी मे उसके एपार्टमेंट मे, उसके सान्निध्य म विताना चाहता है—'विद यू एलान !' उसन कहा था— बिलकुल और केवल आपके साथ !'

'यू आर मोस्ट वेलकम ! मैं ता वसे भी रोज ही शाम को फ्री रहती हू ' वही मीठा, सहज, गुजित स्वर यह लडकी 'असहज' क्यों नही होती ? क्या इसके रक्त म यौवन की उष्णता नही ? क्या इसके वक्ष म नारी मन के स्पदन नही ? यह ऐसी प्रस्तर-प्रतिमा-सी क्यो है ?' वह जानकर रहेगा सुनीता की 'सहजता' कृष्णकात के लिए एक चुनौती वन गई थी।

'हैलो, गुड ईवनिंग !' उसने अपना झक्झकाता गोरा हाथ बढाया।

'नमस्कार, वलकम ! आइए !' सुनीता ने अपनी सावली हथेलिया नमस्कार की मुद्रा म जोड दी। उसकी आखो म वही सहज निर्दोष स्वागत था।

उसन अपमानित-सा महसूस किया। यह लडकी उसके बढे हाथ को लौटा रही है ह्वाट ए फुलिश गल' ।

सुनीता प्याला म काफी उडेलने लगी थी। उसन कुछ नमकीन चिप्स तलकर रखे थे और रसगुल्ले भी बनाए थे— आपके लिए यह कुछ बनाया है। देखिए, बनाया है या विगाडा है !' सुनीता न हसकर रसगुल्लो की प्लेट उसकी ओर बढा दी।

आप चाह तो मुझे भी बना सकती हैं काफी बिगड गया हू।' वह अपन को रोक नही सका, अनायास कह गया उसने पाया कि उसका पुरुष वक्ष धडकने लगा है तीव्रता से किन्तु सुनीता के मुख पर फिर भी कोई स्पदन नही उभरा बस, वह एकदम मौन हो गई।

'आइ एम सॉरी मिस सुनीता, अगर मैं कुछ गलत कह गया होऊ लेकिन आज मुझे आपसे कुछ पूछना ही है, अगर आप इजाजत दें शायद आप कहगी, क्या पूछना है ? तो मेरा उत्तर होगा, इसलिए कि आपके उत्तर से मुझे कुछ लेने देने जसा

हो गया है ' कृष्णकांत ने पाइप सुलगा ली। गहरे कश लेता वह सामने बैठी उस साधारण, सांवली युवती को अपलक देखने लगा था प्रत्युत्तर मे सुनीता की गह री काली, पनीली-सी आखें भी उसे निर्निमेष देखने लगी थी—उनकी नमी गहरा उठी थी। किंतु उसके स्निग्ध सावले कपोलो पर कोई रक्ताभा झलकी न थी एक रक्तहीनता सी छाने लगी थी—'मिस्टर कात ! एक्सक्यूज मी ! मेरे पास किसीको देने के लिए कुछ भी नही है।'

'आप आप ले तो सकती है, यदि कोई कुछ देना चाहे या लेने का भी स्कोप नही है ?'

'मेरे पास किसी देन लेन का कोई स्कोप नही है मुझे मेरे हाल पर छोड दीजिए ' सुनीता की आखे पथराने लगी थी किसी असह्य चोट से आहत सी।

'आखिर बात क्या है शायद आपका कोई और अफयर है ? आर यू इन लव विद समबडी ? माफ कीजिए मैं एक दोस्त की तरह आपकी मदद करना चाहता हू—सिर्फ इसलिए कि आपको भी हसती देखना चाहता हू ' कुछ क्षणो म ही सुनीता की शात सुस्थिरता के सम्मुख कृष्णकांत का उन्माद ऐसे ही शात हो गया था जसे भडकते शोलो पर किसीने ठडा पानी उडेल दिया हो किसी दाह को शात करता सा ठडा पानी ! बस, वह केवल चाहने लगा था कि वह सुनीता को हसती देख सके कई युवतियो को ताल चुकी उसकी आखो म इतनी इमानदारी सी उभर आई कि सामने आइने म अपनी ही आखो का प्रतिबिम्ब दखते वह हैरान रह गया, उसको अपनी आखो के गुलाबी डोरे एसे कस उजले हो गए !

क्या कीजिएगा जानकर ? फिर भी आपने पूछा है तो बता देती हू इंडिया म भुवाली सनटोरियम म टी० बी० का एक मरीज अपनी अंतिम सास गिन रहा है टी० बी० की लास्ट स्टेज है । मरे लौटने तक भी उसका बचना मुश्किल है बल्कि यह निश्चय है कि वह बचेगा नही इसलिए आपकी शुभकामनाओं

का शुक्रिया। किन्तु मेरी नियति मे हसी नही है मिस्टर कात आसू ही है मुझे मेरे हाल पर छोड दीजिए। कम ऑन, लेटस टॉक एबाउट समथिंग एल्स!'

सुनीता ने आसुओ मे भीगी मुस्कान के साथ काफी का दूसरा प्याला कृष्णकात की ओर बढाया सुनीता के हाथ स्थिर थे, किन्तु उसके ही हाथ कॉप गए प्याला गिरा चूर चूर हो गया—'ओह! आइ एम सो सॉरी!' वह प्याले के टूटे टुकडो को बटोरने के लिए झुका।

मैं उठा लूगी ' सुनीता ने अपनी बर्फ सी हथेलियो मे उसका उष्ण हाथ बदी कर लिया था। चितवन से हथेलियो तक सुनीता ने शायद उसे एक ठडे पथराए एहसास मे बाध भी लिया था सुनीता वैसी ही घुटने टेके बैठी रह गई थी उनके बीच का समय—हाथ, आखे, होठ, सब कुछ कुछ देर पथराया सा रहा 'तो यह लडकी मृत्युशय्या पर पडे किसीके लिए, इतनी दूर बैठी जीवित लाश हुई जा रही है ओह!' कृष्णकात ने सहसा सुनीता को आलिंगन मे कस लिया— मिस सुनीता मैं इतजार करूगा कि आप कभी न कभी हम सके उस टी० बी० के मरीज की खातिर, या फिर मेरी खातिर!'

सुनीता ने स्वय को उस आलिंगन मे छुडाने का भी कोई प्रयत्न नही किया किन्तु जाने कैसी वर्जना सी थी उसकी निष्प्रयासता मे कि कृष्णकात की बाहे स्वय ही शिथिल हो गइ

सुनीता को बाह से घेरकर इजी चेयर पर बैठाते, वह सचमुच अपराधी सा हो उठा—'आइ एम सारी मिस सुनीता, रियली सॉरी टु ना सच मड फॅक्टस एबाउट यू! उसका गला रुधा सा था और वह तेजी से सुनीता के कमरे से निकल आया था फिर देर तक वह अपनी उन क्षणो की भावुकता पर झल्लाता रहा।

उसी मास, दो सप्ताह बाद उसने लक्ष्य किया, सुनीता के एपार्टमेट का दरवाजा लगातार बद है—तीन चार दिन से। चौथे

दिन उससे न रहा गया वह फिर शनिवार की ही एक दिन शाम थी जूली उमस उन्मुक्तता से खेलकर गई थी किन्तु उस सारे खेल खेल को सलता, वह सुनीता के बंद दरवाजा को सोचता रहा था— बाय, चियस, सी यू अगेन।' कहती जूली सहमी मुड़ी थी 'आइ थिंक वी शल गेट मैरीड नाउ डियर!'

फिर तुम्हारे मरिलिन मनरो बनने का क्या होगा?' कृष्णकांत ने रोन की ही शरारत से हंसकर पूछा। 'तुमसे शादी करके भी मैं मरिलिन मनरो बन सकती हूं। तुम मुझे रोकोगे क्या? रोक सकते हो क्या?'

बिलकुल रोकूंगा। यू नो आइ एम एन इंडियन विद इंडियन इन्हिबिशन्स!' कृष्णकांत ने जूली का आलिंगन में कसते हुए छेड़ा।

जूली छिटककर अलग हो गई— एंड कीप इट इन माइंड दैट आइ एम एन अमेरिकन! बांधकर रखना है तो उस काली लड़की को चुनो! वेल बाय!' जूली छह इंच के हील्स पर अपने 34-24-36 अनुपात के मोहक उभारों को लचकाती चली गई।

कृष्णकांत उठा, काफी रात हो गई थी फिर भी स्वयं को रोक नहीं सका जूली की यौवन और सौन्दर्य से भरपूर देह में डूबने के पश्चात भी उसका मन आज बिना भीगा दूर खड़ा रह गया था सुनीता की सांवली, साधारण अनुपातों वाली काया को तोलता रहा था यौवन और सौन्दर्य की कोई भी तो असाधारणता नहीं है सुनीता के पास! किन्तु पता नहीं कैसे कब वह जूली की तुलना में कृष्णकांत पर हावी हो उठी थी!

कृष्णकांत ने घड़ी देखी, रात के ग्यारह बज रहे थे। बाहर बर्फ गिरने लगी थी वह यन्त्रचालित-सा नहीं, मन्त्रविद्ध-सा उठा सुनीता का बंद दरवाजा खटखटाया 'आइ एम सारी सुनीता! आप ठीक तो हैं?'

उत्तर में दरवाजा खोलती, बिखरे केश, ठंडी देह और रक्तहीन मुख लिए सुनीता, कृष्णकांत की बांहों में ढह गई थी। 'क्या

हुआ ?' उसने सुनीता को गाद मे उठाकर बेड पर लिटा दिया। अपने कमरे से ब्राडी लाकर पिलाई। सुनीता मूर्च्छितप्राय थी वह सुनीता की बफ होती हथेलिया पर भी ब्राडी मल रहा था— डाक्टर का बुलाना चाहिए क्या ?'

अचेत सी सुनीता ने तकिए के नीचे से एक पत्र निकालकर उसकी ओर बढा दिया। पत्र सुनीता की एक सहेली का था, लिखा था— सुनीता, कसे तुम्ह बताऊ कि जिसका तुम्ह या जिसे तुम्हारा इतजार था, वह नही रहा अमर की मृत्यु हो गई तुम्ह तसल्ली दने के लिए मेरे पास श द नही हैं फिर भी अपने आपको सभालना —माया।'

सुनीता आखें मूदे निश्चल हो गई थी पत्र पकडे कृष्णकात भी पत्थर हो गया था

सामवार को कृष्णकात ने देखा—सुनीता एपाटमट मे निकल रही थी—सदा की भाति कालज के लिए तैयार होकर। काले केश साद जूडे म वधे थे। सदा की भाति सफद साडी मे वह स्निग्ध सावली देह लिपटी थी। पता नही कोई भी प्रदशन क्या नहीं इस लडकी मे—न सुख का न दुख का, न किसी कामना का ? हा, सुनीता का मुख शनिवार की रात जैसा ही रक्तहीन था पल भर के लिए कृष्णकात एक अजीब एहसास स काप गया— 'सफद साडी मे लिपटी यह युवती क्या कफन ओढे रहती है ?' वह बढा— लेट अस गो टुगदर टुडे !' सुनीता उसके साथ चुपचाप चलने लगी थी, सहमति से।

एसे ता यह मर जाएगी आइ मस्ट सव हर ' और कृष्णकान की हर शाम सुनीता के साथ बीतने लगी थी जैसे सुनीता का समय भी उसके साथ चलन लगा था चुपचाप सहमति से। किन्तु सुनीता के चेहरे का रग नही लौट रहा था कृष्णकात उसके रक्तहीन मुख पर रक्ताभा लौटाने के लिए आतुर हो उठा— 'सुनीता मे आइ प्रपोज टु यू मुझे स्वीकार कर लो सुनीता,

आइ तव यू।' चाय की प्याली बढ़ाता सुनीता ने कोई विरोध नहीं किया तुरन्त पर बार फिर कृष्णकान्त की उष्ण भुजाओं में ढह गई—'इट ज माई गुड फारचून।' कहती

हनीमून के लिए कृष्णकांत सुनीता को लेकर स्विट्जरलैंड चला गया गरमियां आ गई थीं और वह सुनीता को उस माहौल से हटा भी लेना चाहता था, कुछ समय के लिए—सुनीता की ओर से कोई विरोध नहीं था—न तन का, न मन का एक मधुर समर्पण लिए वह कृष्णकांत के पार्श्व से सटी रहने लगी हंसने मुस्कराने भी लगी मफ्ट साड़ियां छोड़कर कलरफुल साड़ियां पहनने लगी केशों को विभिन्न स्टाइल में जूड़े में बांधने लगी कृष्णकांत के कहने पर अपनी गहरी काली आंखों को मस्कारे की धार देने लगी गुलाबी लिपस्टिक भी लगाने लगी दक्षिण की कांजीवरम् या बंगाल की जरी बॉर्डर की तांत की साड़ियां सुनीता पर विशेष रूप से सजतीं साड़ी से मैच करता कोई फूल कृष्णकांत सुनीता के जुड़े में जरूर टांक देता

किन्तु किन्तु तीन मास के हनीमून के पश्चात् भी पार्श्व में अपनी बाहों में समाई सुनीता को देखते, कृष्णकांत को यही लगता कि सुनीता उसकी बाहों से परे है प्रकट में सुनीता के तन मन को वह पा चुका था, जीत चुका था—किन्तु अप्रकट में उसे लगता, सुनीता अपराजिता ही है—'अपराजिता।'

वर्ष बीतते न बीतते सुनीता मां बन गई मैटर्निटी होम से सुनीता को वापस लाते कृष्णकांत ने एपार्टमेंट में प्रवेश करते ही सुनीता को, उस नन्ही शिशु देह सहित बाहों में भर लिया वह सुनीता को और उस नन्ही जान को चूमने लगा था बार बार 'डार्ट गेट सो एक्साइटेड कांत! क्या हो गया है तुम्हें।' सुनीता बच्ची को बेड पर लिटाकर कृष्णकांत से लिपट गई। लिपटी रही एक सुदीर्घ आलिंगन में देर तक। 'कुछ परेशान हो? क्या बात है?

कुछ गलती हो गई मुझसे ? या कोई कमी रह गई ?' कृष्णकात को आलिंगन मे कसे सुनीता पूछ रही थी।

कृष्णकात ने भरपूर नजर से सुनीता को देखा—मातत्व की आभा म उस सावले चेहरे की रक्ताभा पूरी लौट आई थी सुनीता भरपूर उसकी बाहो मे भी थी—पूण समर्पिता !

'हम अपनी बच्ची का नाम रखेंगे—अपराजिता ! क्यो डियर ?' कहता कृष्णकात सहसा कह बैठा—वैसे, यह नाम तुम्हारा होना चाहिए था !'

अर्थ

दीवार घडी की टिक टिक म आसन्न मृत्यु की पगचाप सुनती कुमुद खामोश थी। मृत्यु कब दबे पाव सेठजी की पलका पर उतर आएगी—केवल वह क्षण निश्चित नही था। किन्तु मृत्यु आएगी—यह निश्चित था। सिविल सजन तक जवाब दे चुके थे कि सेठजी अब बचेंगे नही।

मृत्यु! एक बेहद ठडी झुरझुरी कुमुद की शिराओ म दाड गई। क्या होती है यह मृत्यु?—एक खामोशी जब कोइ बालता हुआ एकदम चुप हा जाता है। या एक शून्य जब कोई होता हुआ नहा होता है। कुमुद मा की खासी का खामाश हाते देख चुकी थी पिता के न होने के शून्य को भी झेल चुकी थी।

सेठजी भी अब नही हागे। सेठजी? कुमुद की शिराओ म दौडती वह ठण्डी झुरझुरी रुक गई। सेठजी—कुमुद के पति पुरुष! पति तो सेठजी कुमुद के निश्चय ही रहे ह। पवित्र अग्नि के चारो ओर ली हुई उन सात परिक्रमाओ को कुमुद झुठला नही पाइ, झुठला नही सकी। लेकिन पुरुष? कुमुद ने अपनी आखो का दीवार घडी पर केंद्रित किया। भीतर से एक चीत्कार उठकर हाठो तक आया—पुरुष कुमुद की शिराओ से पुकार बनकर फूटता—पुरुष। कुमुद की आखो का स्वप्न पुरुष! कुमुद के तन का ही नही मन का सगी—पुरुष! ऐसे पुरुष तो सेठजी नही ही थ कुमुद के निकट। कुमुद एकाकिनी थी।

कुमुद रानी की पलके गिरना भूल गइ। भीतर स उठते उस चीत्कार का रोकते कुमुद न अपने कापते होठ कसकर भीच लिए। तीस वष की उसकी कोमल, सुन्दर देह म अभी वह आग ठडी कहा

हुई थी जो कुमुद के ही शब्दो मे, देह की नही मन की आग थी । एक आग, जो ठडी नही हुई थी, कुमुद के तन मन को दहकाती रही थी । एक प्यास जो बुझी नही थी, कुमुद के प्राणो को चिटकाती रही थी । कुमुद सोचती, सेठजी तो इस आग या इस प्यास का अथ भी नही समझ पाए थे।

कुमुद रानी ने आखें मूद ली। उस आग या उस प्यास के जाने कितने चित्र कुमुद की व द पलको मे कौधने लगे थे ।

एम० ए० मे थी कुमुद, जब उसकी सपनो मे डूबी-सी, काली-कजरारी आखो को लक्ष्य कर किसीने अचानक कहा था

अनियारे दीरघ दगनि किती न तरनि समान
वह चितवन औरे कछू जिहि बस होत सुजान ।

वह वीरेन्द्र था—कुमुद की काली-कजरारी आखो की अभ्यथना करता वीरेन्द्र ! वीरेन्द्र कुमुद का सहपाठी था पडोसी भी । वीरेन्द्र की अभ्यथना से कुमुद के सपने भक्वत हो उठे । कुमुद ने पाया कि उसकी काली कजरारी आखो के सपनो को अथ मिल गया है यही अथ तो कुमुद ढूढने लगी थी ढूढ रही थी ।

कुमुद मामा मामी के साथ रहती थी । मामा रेलवे मे मामूली क्लक थे । अत कुमुद का सारा परिवेश मामूली था । उस मामूली परिवेश मे वह सुन्दर आखो वाली लडकी जाने क्या सुन्दर और कोमल ढूढने लगी थी । कभी वह सोचती, शरद के नीले आकाश मे उडा जाता यह शुभ्र मेघ-खड उसके आगन मे उतर आए ता । कभी वह चाहने लगती कही से कोई रग बरसे कि उसकी तन की चुनरी भीग जाए कही से कोई गन्ध उडे कि उसके मन का एकान्त महक जाए !

मामी ने आगन म तरकारिया उगा रखी थी, बैंगन, कद्दू और करेले । जब घर म उगी तरकारियो की सब्जी बनती तो मामी बार-बार कुमुद से कहती—'देख, आज पूरे दस आने बचे हैं और सब्जी भी कित्ती स्वादिष्ट बनी है ! यही चीज बाजार मे लेने जाओ तो ।' मामी वाक्य अधूरा छोड देती और कुमुद सोचती रह

जाती। क्या इन कद्दू और करेलो की जगह गुलाब गेंदा नही उगाए जा सकते ? कुमुद ने मामी से अपनी बात कही तो वे हस पडी—'अरी बिटौनी, भला गुलाब गेदा मे क्या फायदा ? तरकारी म तो पम बचे है।'

लेकिन कुमुद ने मामी की आख बचाकर एक गुलाब की कलम राप दी। और जब उस पौधे मे फूल खिले तो कुमुद न चाहा कि वह मामी को उन फूलो का अथ समझा सके। लेकिन मामी भना रही थी—'ई गुलाब मरा किस काम का ! इत्ती जगह मे तो भिडी बो लेत। तेर मामा को भिडी पसन्द है, और यहा मिले भी नही है।' लेकिन कुमुद की आखा का सजल होते दख मामी चुप हो गइ। अच्छा, अच्छा रहन दे बिटौनी, रो मत। गुलाब चोटी मे लगा लीजियो।' मामी को क्या पता था कि बिटौनी उन गुलाबो को देखती किन सपनो मे खाकर रह जाती है। कुमुद के उन सपना के राजकुमार के हाथो मे गुलाब ही गुलाब होते थे। वह राजकुमार कुमुद के केशो म गुलाब गथता रह जाता था कि सवरा हो जाता था और मामी कुमुद को सपना स उठाती कहती हाती थी—'बिटौनी उठ गया, कालिज नही जाना है।

कुमुद मधाविनी थी। उसकी उन काली कजरारी आखा मे बुद्धि की दीप्ति भी थी। इस दीप्ति न कुमुद के सपना का और जगमगा दिया था। कुमुद की तरुण आखा क व सपन उन सितारा से जगमग थ जा अभावा की काली राता म और जगमगात ह ! वीरेन्द्र उन सितारा के बीच चाद बनकर चमक उठा था। और कुमुद दख रही थी कि अब उसके केशा म फूल ही नही गुथेंगे, वीरेन्द्र उसकी माग का सितारा से भी भर देगा। वीरेन्द्र सम्पन्न घर का इकलौता बटा था। बगला था कार थी। वीरेन्द्र न कुमुद स बार-बार कहा कि वह कुमुद स प्रम करता है प्रम ! प्यार ! ! कुमुद को लगा शरद के नाले आकाश म उडा जाता वह शुभ्र मधखड सच म उसक आगन मे उतर आया है ! कोई रग बरस गया है और उसक तन की चुनरी भीग गई है। कोई गध उड आई है और उसक मन

का एकात महत्त्व महक उठा है !

तभी कुमुद पर शीतला का प्रकोप हुआ। ज्वर और पीडा की अचेत अवस्था मे भी वह बार-बार चौककर दखती रही—वीरेन्द्र आया ? मामी कुमुद की इस पीडा को भी समझती थी। शीतला के शात हाने पर नीम और हल्दी का उबटना कुमुद का लगाती मामी आहत सी कह रही थी—'देखा बिटिया वीरू एकौ दिन दखन नाही आया। अर मरा साचता होयगा शीतला निकली है कही कुमुद की आख नाक न बिगड जाव और तू उसके ध्यान म मरी जाती है। मान न मान बिटौनी, ई सब तेर चन्दा से रूप के आसिक है और क्या भगवान ना कर, कही आख नाक बिगड जाती ता चल खर मना तेरा रूप नाही बिगडा। मामी ने पूरे महीना भर नीम हल्दी का उबटना लगाकर कुमुद का रूप और निखार दिया। निस्सतान मामी सच मे कुमुद का प्यार करती थी।

अपन उस निखरे रूप का दपण मे देखती कुमुद की आखा म आसू भर आ रह थ । क्या प्रेम इतना अल्पजीवी हाता है ? क्या माह इतना भ्रामक हाता है ? उसन ता अपने प्रेम के चिरजीवी हाने की कामना की थी उस विश्वास था कि यह माह दीर्घजीवी हागा। किन्तु कहा उड गया वह मेघखड ? कहा खा गए वे रम गार गध जिनका रूप यथाथ की विरूपता क एक आक्रमण का भी सामना नही कर सका।

नीम-हल्दी के उबटन स कुमुद का रूप सच म और निखर आया था। स्वस्थ हाकर कॉलज गई ता सुना— अरे ! तुम तो और सुन्दर हा गई हा। सुन्दर ? क्या वीरेन्द्र का आकषण केवल रूप का आकषण था ? कुमुद न आखें फर ली—मेरे सामन म हट जाओ वीरेन्द्र।'

अच्छा साहब हट जाते है।' वीरेन्द्र तो हट गया किन्तु कुमुद उसे न मन से हटा सकी न आखा स। जिस मेघखड के साथ कुमुद ने किरणो के रथ पर चढकर आकाश के उन्मुक्त नीले विस्तार म

उड जाने के सपने देखे थे, वह केवल भाप बनकर उड गया था और कुमुद केवल आसुओ से भीगकर रह गई थी। भाप को पकडन के प्रयास मे भी तो हाथ भीगकर रह जाते हैं मेघखड या केवल भाप भाप कुमुद क्या मान इसे?

तभी शहर के सबसे धनी सेठ बिहारीलाल के घर मे कुमुद के लिए रिश्ता आया। सेठजी की पत्नी का स्थान रिक्त था। सेठजी ने कुमुद को कॉलेज डिबेट मे बोलते सुना था, देखा था। मामा इस रिश्ते के नाम पर उछल पडे। जिस निधनता का अभिशाप वे जीवन भर झेलते रहे थे, उससे मुक्ति का उपाय उनके द्वार पर आ खडा हुआ था। कुमुद ने विरोध किया तो चीखे—सुन ले बिटौनी? ये रिश्ता तो तुझे करना ही पडेगा। नही तो काटकर फेंक दूगा। मा बाप तो पैदा कर के मर गए, पालना हम पडा।' काट दिया जाता तो कुमुद सह भी लेती, लेकिन माता पिता के उस रक्त का अपमान असह्य था जो उसकी रगो मे जीवन बनकर दौड रहा था। चुका देगी वह पालन पासने का सारा ऋण, जरूर चुका देगी!

मामी कुमुद का दुख समझती थी। लेकिन मामी ने भी सम झाया—बिटौनी ये पियार-वियार का चक्कर छोड हमने तो तेरे मामा से बियाह बाद ही पियार करना सीखा तू भी सीख लेगी रिश्ता मान ले। राजा के घर जाएगी तो रानी बन के रहेगी।' किरणो के रथ के स्थान पर कुमुद के सामने ब्यूक कार आ खडी हुई थी।

सुहाग की रात जडाऊ जेवरो और गुलाबी बनारसी साडी म सजी कुमुद ड्रेसिंग टेबुल के आदमकद दपण के सामने आ खडी हुई। वह सुदरी है कुमुद जानती थी। लेकिन उसमे इतना लावण्य है, यह वह कहा जानती थी? जडाऊ जेवरो की जगमग से अधिक जगमगाहट उसके उस मुख पर थी, जिसे दपण म देखती वह पत्थर हुई जा रही थी। उसके उस जगमगाते मुख के पाश्व मे बार बार एक मुख उभर रहा था—वीरेन्द्र का। और उस मुख के होठो पर था

वे ही पक्तियां 'अनियारे दीरघ दगनि ।'

पत्थर होते, कुमुद ने वे 'अनियारे दीरघ दग' मूद लिए। फिर चौंक कर आखें खोली तो पाश्व मे एक और मुख था—सेठजी का। सेठजी जाने कब कुमुद के पाश्व म आ खडे हुए थे। कुमुद ने देखा, वीरेन्द्र के तरुण मुख की तुलना म यह मुख कितना प्रौढ था । वीरेन्द्र की स्वप्निल आखों की तुलना मे ये आखें कितनी हिसाबी। घनी भौंहो और होठो ने सेठजी के मुख को एक गरिमा-सी दे दी थी, किन्तु वीरेन्द्र के सजीले मुख की तुलना मे यह गरिमा भी कितनी कठोर थी! हा, सेठजी के मुख पर एक आभिजात्य है, कुमुद को मानना पडा। इस दामी आभिजात्य के अतिरिक्त इनके पास है ही क्या? कुमुद भीतर ही भीतर तन गई।

सेठजी ने कुमुद के चिबुक को धीरे से उठाया— कितनी सुन्दर हैं आप! सच इतना रूप मैंने और कहीं नही देखा!' सेठजी हसे यह हसी नहीं, केवल दन्त पक्ति ही उजली है। डेंचर हजार रुपयो से कम का नहीं होगा इनका क्या ये बत्तीसी के साथ बीवी भी खरीद सकते हैं—कुमुद तनती जा रही थी।

मेरी ओर देखिए। सेठजी ने कुमुद का मुख हथेलियो म भर लिया था। कुमुद ने दृष्टि उठाई, एक प्रज्वलित दृष्टि। उस दृष्टि म नववधू की लाज नही एक आग थी। सेठजी हतप्रभ हो उठे— 'क्या बात है कुमुद रानी? आपकी आखो म यह सजा क्यो है? क्या अपराध किया है मैंने?'

'सजा तो आपने दी है मुझे।' कुमुद ने कहना चाहा, कहा नहीं। होंठ कसे उसी प्रज्वलित दृष्टि से सेठजी को देखती रही—अपलक।

'शायद आपकी तबीयत ठीक नहीं है। आराम कीजिए। अब आज मैं आपको नहीं छुऊगा। हा, कल का वादा नही कर सकता। लाभी टाइप का आदमी हू और आपकी इस सुन्दर देह का भारी लाभ जाग उठा है मेरे मन मे।' सेठजी फिर हसे। बत्तीसी फिर कौंधी। सेठजी के होठो से 'मन' शब्द कैसा लगता है । ये देह का अर्थ

समझत होंगे मन का क्या समझेंगे, समझ भी नही सकते सुहाग-सेज पर उस रात कुमुद रानी का तन अछूता रह आया । और मन को तो अछूता रहना ही है। प्रगाढ निद्रा म निमग्न सेठजी के समीप लेटी कुमुद सारी रात करवटें बदलती रह गई।

सारी रात कुमुद रानी की देह म वे गुलाब चुभते रहे जो उसकी सुहाग सेज पर बिखरे थे। किसीने बताया था कि सेठजी को गुलाबो का शौक है। एक बडा भारी रोज गाडन' है उनका जिसके गुलाब हर साल इनाम जीतते है। शायद वे ही इनाम जीतने वाले गुलाब सुहाग सेज पर बिखरे थे । य गुलाब वे नही थ जिनके सपने दखती कुमुद की कुआरी आखो म मवरा हो जाता था। सेठजी ही वह सपना के राजकुमार कहा थे? वह राजकुमार ना शायद वीरेन्द्र ही था। सेठजी न कुमुद रानी को सोने का पिंजरा दिया है चुगने को हीरे मोती देगे । किन्तु वह रग और गध नही दे सकेंगे जो कुमुद की प्यास थी पुकार थी, कामना थी। वह सुगध खड गुलाब रग गध कुमुद रानी न जाने कब थककर पलकें मूद ली।

सुहाग की रात का सवेरा हुआ। कुमुद रानी के अछूते बदन पर एक कीमती दुशाला ढका था। किसीने बडे जतन से, सोई कुमुद की देह पर दुशाला उढा दिया था। सेठजी ने ही उढाया होगा—कुमुद जान गई। उसे लग रहा था, एक निर्मम खेल का आरम्भ हो चुका है और इस खेल म वह एक खिलौने से अधिक कुछ नही है। सेठजी दो बार और भी तो यह खेल खेल चुके हैं। कुमुद सेठजी की तीसरी ब्याहता थी। सेठजी पचासीस वर्षों की सभी ऋतुए देख चुके थे कुमुद न केवल चालीस वसन्त देख थ। चालीस और पैंतालीस वसन्त और पतझड । काश इस कीमती दुशाले के स्थान पर केवल एक मुग्ध आलिंगन होता—वीरेन्द्र का। सारी रात पत्थर सी जाग कुमुद सिमटकर लगी थी। अपने मन का सुहाग मन पर वह गहरा अकेली सभी निश्चिन्त था।

विवाह की पहली वर्ष गाठ पर सेठजी न कुमुद का कठहार

कुमुद रानी को पहनाते कहा—'शायद मैं आपसे प्रेम करने लगा हूं कुमुद रानी।'

कुमुद की सुडौल ग्रीवा वक्रिम हो गई—प्रेम! आप प्रेम का अर्थ समझते हैं?' कुमुद की दृष्टि फिर प्रज्वलित हो उठी थी।

किंतु आज सेठजी हतप्रभ नहीं हुए। कुमुद रानी की आंखों पर झूल आई लट को समेटते उन आंखों को चूम लिया—'हां शायद मैं प्रेम का अर्थ नहीं समझता। समझूं भी कैसे? आपकी तरह पढ़ा-लिखा नहीं। आप साहित्य में एम० ए० हैं। मैं तो मैट्रिक भी पास नहीं कर सका। और जिस लेन-देन, सट्टेबाजी की दुनिया में मैं रहता हूं, वहां कुछ भी सोचने समझने की फुरसत कहां है? लेकिन क्या यह प्यार नहीं है कि मैं आपके बिना नहीं रह सकता। आपको करीब पाना चाहता हूं। आपके करीब रहना चाहता हूं।' सेठजी ने एक दृढ़ आलिंगन में कुमुद को समेट लिया था।

आपको गुलाब बहुत पसन्द हैं न! देखिए इस कुंदन के कंठहार में मैंने मोती मानिक के गुलाब गढ़वा दिए हैं। मेरे ये गुलाब पसन्द आए?' सेठजी का स्वर आर्द्र-सा था। लेकिन कुमुद ने उस आलिंगन में पिघली न उस स्वर से। सेठजी मोती मानिक के गुलाब गढ़वा सकते हैं। किसी क्यारी में अनायास खिल आए गुलाब का अर्थ क्या समझेंगे? क्यारी में गुलाब खिलाए नहीं जाते हैं, खिल जाते हैं!' कुमुद काटना चाहती।

सेठजी को देखती कुमुद रानी की दृष्टि बार-बार प्रज्वलित हो उठती। सेठजी उस दृष्टि को चुम्बनों में भेंट जाते—क्या आप मुझसे प्रेम नहीं कर सकतीं?

कुमुद रानी की सुडौल ग्रीवा फिर वक्रिम हो उठती—प्रेम किया नहीं जाता हो जाता है?' क्यारी में गुलाब खिलाए नहीं जाते खिल जाते हैं सोचती कुमुद की प्रज्वलित दृष्टि में वे गुलाब कौंधते रह जाते

'नहीं जानता कि प्रेम किया नहीं जाता हो जाता है। मैं बड़ी रानी जी से प्रेम करता था। फिर जब वे न रहीं तो मझली रानी

से प्रेम करने लगा। भगवान् की इच्छा से वे भी नही रही तो प्रेम के लिए भटकता रहा। जब तक आपको नहीं पा लिया और अब, कुमुद रानी, विश्वास मानिए मैं आपसे प्रेम करता हू !' सेठजी कुमुद पर झुक जाते।

प्रेम प्यार क्या है यह ? रूप तारुण्य देह मन यह सब कुछ, या यह सब कुछ भी नहीं सेठजी के लिए यह 'प्रेम' शायद कुमुद की सुदर देह है। वीरेन्द्र के लिए यह कुमुद के रूप का आकर्षण था और स्वय कुमुद के लिए ? प्रेम शायद एक भावना है एक स्पदन देह और मन की एकात्मता म गुथा गुलाब तन की चुनरी को भिगा देने वाला रग मन के एकान्त को महका देने वाली गध और किसी रग किसी गध के लिए कुमुद रानी के प्राणो की छटपटाहट तीव्र हो उठती सेठजी के प्रेम के अथ को कुमुद स्वीकार नही कर सकती थी। वह मोती मानिक के गुलाबो वाले उस कठहार को उतारकर फेंक देती और मखमली शया पर लोटती प्रेम का अथ ढूढा करती।

सेठजी का मुह लगा ड्राइवर हनुमान कहता—हलफ से कहत हो रानी मा ! हमर सेठजी अस्सल आदमी हैं बिलकुल अस्सल ! जब कमला रानी के भगवान उठाय लिहिन तो सठजी बौराय गए। एक दिन हमसे बोले—चलो हनुमान आज लच्छोबाई के इहा चलो। लच्छोबाइ तो सेठजी का देख क निहाल हो गई। लकिन हमार सेठजी मुजरा सुनि क उठि आए। हलफ से कहत हो, हमार सेठजी पतुरिया क पलग पर कबहु नाही चढ। बिलायती मगाय मगाय क हाकिम-हुक्काम के दोस्तन के पिआवत रहे मुदा खुद मुह जुठार के छोड दिया अर, हमार सेठजी तो साधू आदमी है साधू'

'साधू ?' कुमुद का सर्वांग व्यग्य मे झनझना जाता। कुमुद की देह के लोभ म आकठ डूबे सेठजी साधू हैं ? दो पत्नियों के बाद पतालीस वप की आयु म तीसरी युवती पत्नी ले आने वाले सेठजी साधू हैं ?

हनुमान कहता—हमरे सेठजी की बत्तीसी बिलकुल अस्सल है।

राज नीम की दातौन जो करत हैं। बडी-बडी महफिल मे बिना पिए उठ आवत हैं और आध सेर मलाईदार दूध पी कै सा जावत हैं। नीम की दतौन और मलाईदार दूध हमरे सेठजी को जरूर चाही। अउर अब रानी मा जब से आप आई है, सेठजी मगन रह लाग हैं आप पर जान छिडकत हैं हमार सेठजी, हलफ से कहत हो ।'

सेठजी की बत्तीसी असली है, कुमुद जान चुकी थी। वह यह भी जान चुकी थी कि सयम की धार पर चढा सेठजी का पौरुष कुठित नहीं हुआ था। लेकिन देह के पौरुष से क्या होता है ? मन को क्या इस पौरुष से जीता जा सकता है ? नही न ? सेठजी की भुजाओ म पराजित कुमुद मन की अपराजेयता को झेलती काठ बनी रहती है। काश, यह मन हार पाता !

आखिर आप मुझस नाराज क्या रहती हैं कुमुद रानी ? क्या दोप है मुझम ? आपको व्याह कर लाया हू। आपसे प्रेम करता हू। आपको सब कुछ देना चाहता हू। शायद मुझसे इसीलिए नाराज ह कि मैंन पैसे से आपका खरीदा है। माना, पैसा मरे पास है और बहुत है। और मैंन कहा न, मै लोभी टाइप का आदमी हू। इस पस का लाभ भी नही त्याग सकता जस आपका लोभ नही त्याग सका ' सेठजी दुहराते रहते। कुमुद काठ बनी सुनती रहती । जब जब उसकी सुडौल ग्रीवा वक्रिम हो उठती है। य प्रम का अथ भी समझते है ? क्या शरच्चन्द्र के 'दवदास' का अथ सेठजी को समझाया भी जा सकता है ?

म किसी तरह आपको प्रसन्न कर सकू तो अपने आपको धन्य समझूगा।' सेठजी कहत—आप ऊबी सी रहती है क्यो नही और पढती।'

'एम० ए० तो कर चुकी, अब और क्या पढूगी ? और फिर जितना पढा है उतना ही एक भार हो गया है, और पढकर क्या होगा ?' कुमुद और उदास हो जाती।

'तब आप सगीत सीखिए। कितना मीठा कठ है आपका !

गाएगी तो रस बरसेगा।' सेठजी शायद नच्छाजान की सोच रहे हैं, कुमुद रानी ने सोचा।

नवीन संगीत ट्यूटर के रूप में जब शरद सामने आ खड़े हुए तो कुमुद को प्रथम बार लगा कि सेठजी वास्तव में कुमुद की प्रसन्नता चाहते हैं। शायद सेठ हृदयहीन नहीं। किन्तु 'हृदय शब्द' में सेठजी को जोड़ना कुमुद को चुभने लगा।

सचमुच बड़ा मीठा कंठ था कुमुद का। भैरवी का आलाप लेते सचमुच रस बरसने लगा था। 'मैंने सैकड़ों को ट्यूशन दिया है लेकिन आप जैसा स्वर और स्वरज्ञान कहीं नहीं पाया' शरद कह रहे थे।

'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई' गाती कुमुद तन्मय हो उठी थी। तानपूरे को झंकृत करती उंगलियों की झंकृति सिहरन बनकर सारी देह में दौड़ रही थी। अधमुंदी आंखों में देखा, शरद मुग्ध से उसे देख रहे थे। इस बार गुलाब स्वर की लहरियों में बह आए थे। भैरवी और मालकोस की लहरों में बहता गुलाब! वही रस बरस रहा था जिसकी कुमुद को प्यास थी। वही गंध उड़ रही थी जिसकी कुमुद को प्रतीक्षा थी! शरद की अधखुली तन्मय आंखों में उसी नील आकाश का अन्तहीन विस्तार था। वह शुभ्र मेघखंड भी था। किरणों का रथ भी! 'रानी साहिबा, क्षमा करें मुझे मैं आपसे प्यार करता हूं।' शरद की अधखुली मुग्ध आंखों में कुमुद का प्रतिबिम्ब झलक आया था। कुमुद उन आंखों में अपना प्रतिबिम्ब देखती बेसुध हो रही थी। उसकी अपनी आंखों में भी तो शरद प्रतिबिम्बित हो उठे थे।

आवेश के दुर्बल क्षणों में कुमुद का सिर जब शरद के कंधे पर टिक गया वह जान न पाई। चांद को देखकर लहरों को किनारे का ध्यान कहां रहता है? कोई उससे पूछता तो वह निस्संकोच कहती यह ज्वार भी तो एक मजबूरी होता है।

'कुमुद रानी!' सेठजी का गम्भीर कंठ गरजा—'होश में आइए।'

'मैं पूरी तरह होश में हूं,' कहती कुमुद ने शरद के कंधे से सिर

उठा लिया। किन्तु सटकर खडी रही आई। सेठजी की दहकती आखो से दृष्टि मिलाती वह तनकर खडी थी।

जानती हू, मैं इसी क्षण आपको आपके इस आशिक के साथ सडक पर फेंक सकता हू!' सेठजी आवेश म काप रहे थे। उनके हाथ म चादी की मूठवाली छडी भी काप रही थी।

'और आप कर भी क्या सकते है? इतना ही न। लेकिन आप क्या कष्ट करते है। मैं स्वय ही चली जाती हू।' कुमुद न शरद का हाथ पकड लिया था चलने लगी थी।

सेठजी न कुमुद के शरद का थामे हाथ पर छडी से प्रहार किया। शरद को खीचकर कमरे स बाहर करते दरवाजा बन्द कर दिया। तनी कुमुद अकेली खडी रह गई। जाने कब तक वसी ही खडी रही। कोई अपराध भाव नहीं था उसके मन म। था केवल एक प्रबल आक्रोश कि सेठजी उसे मिटा देना चाहते हैं। सेठजी उसे जीने नहीं देंगे। इस 'जीने' और 'मरने' का अर्थ भी क्या सेठजी को समझाया जा सकता है?

उस रात कुमुद को निकट खीचते सेठजी कापने लगे थ। आवेश मे या आक्रोश मे कुमुद समझ नहीं पाई। मुझे माफ कीजिए रानी साहिबा मैं आपपर अपना अधिकार को नहीं छोड सकता न आपको छोड सकता हू। जब तक मैं हू आपको मेरा रहना होगा। इतना बडा कारोबार इतनी बडी कोठी इतनी बडी जिन्दगी—सब आपके बिना सूनी है। मैं मामूली आदमी हू कुमुद रानी शायद आप ठीक कहती हैं—मैं प्रेम का अर्थ नहीं समझता। बस, इतना समझता हू कि मुझे आपकी जरूरत है।' सेठजी ने आलिंगन कसा। कुमुद सिमट गई। किन्तु कुमुद को प्रथम बार लगा उस सिमटन का दंश उन्हीं का नहीं सेठजी का भी आहत करने लगा है। या यह केवल कुमुद का भ्रम था?

कुमुद ने केश गूथना छोड दिया। काले, घुघराले, तेल विहीन केश बिखरे रहते। सेठजी उन केशो को मुट्ठी म भर लेते— इनका जूडा बनाइए कुमुद रानी। इनपर गजरा सजाइए। बालिए, कौन-

सा गजरा मगाऊ, गुलाब का या चमेली का ?' कुमुद एक विप बुझी मुस्कान फेंककर मुह फेर लेती। उसे लगता, सेठजी क निमम हाठा से फूला के कोमल नाम भी पत्थर की चोट बन जाते हैं। 'कुछ नहा चाहिए मुझे, न गुलाब, न चमली।' कुमुद रानी की आखा म चिनगारिया भडक उठती। लेकिन कुमुद साफ साफ देख रही थी सेठजी की हिसाबी आखो म एक आहत भाव उभरने लगा था। 'क्या सजा दे रही है मुझ कुमुद रानी ? क्यो मुझे थाडा सा सुख देने या पान नहीं देती ? सठजी के कापते हाठो से स्वर मिलाकर वे आहत आखें कहती। लेकिन कुमुद रानी की दढ धारणा थी कि व आखें नही, केवल उन आखो का स्वाथ आहत हुआ है।

पचास वर्षीय सेठजी को दिल का प्रबल दौरा पडा। मत्यु शया पर उन्होन कुमुद रानी का बुलाया। कुमुद की हथेली अपने सीने पर दबात बोले, लगता है चलने की घडी आ गई है और सब तो ठीक है केवल एक काम बाकी रह गया है याद है मैंने आपस कहा था, म आपको सडक पर फेंक सकता हू ?

याद है यह काम आप आज भी कर सकत है।' कुमुद एस किसी भी क्षण के लिए तैयार रही आई थी। सेठजी के न रहने पर, सेठजी स सम्बन्धित सब कुछ छीना जा सकता है। वह सब कुछ सठजी भी छीनकर जा सकते है। कुमुद के दीघ दगा म एक विशाल शून्य उभर आया था। पूरे तीन वष आवेग और आक्रोश स कापते सेठजी को वे इसी शून्य पर झेलती रही थी।

कुमुद की हथेली सीने पर दबाए सठजी हाफने लगे थ। डाक्टर ने कुमुद स हट जाने को कहा था। हटती कुमुद ने देखा, सेठजी की निश्चल हाती पलकें उसपर निबद्ध थी। सठजी डूबने लगे थे।

मत्यु के तीसरे दिन सठजी का 'विल पढा जा रहा था। किसी भी स्थिति का सामना करने तैयार बठी कुमुद निश्चल थी। भीतर-बाहर एक शून्य के अतिरिक्त था भी क्या

सारी सम्पत्ति के दो बराबर भाग सेठजी के इंग्लैंड मे पढ़ते दो पुत्रो को दे दिए गए थे। 'विल' बिलकुल साफ और निश्चित था।

'और कुमुद रानी के लिए' एडवोकेट विल पढ रहे थे— मैं यह कोठी, कार और तीन हजार मासिक की आय देता हू। कुमुद रानी जब तक जीवित रहेंगी, ये कोठी और कार उनकी रहेगी। तीन हजार प्रतिमास भी उन्हे मिलते रहेगे। कुमुद रानी प्रसन्न रहें, मेरी भगवान से प्रार्थना है।'

'विल' सुनते निश्चल बैठी कुमुद थरथर कापने लगी। और, सारे समय वह मानती रही थी कि उसके निमम, स्वार्थी, अबुद्धिजीवी सेठ 'प्रेम' जैसे शब्द का कोई अर्थ ही नही समझते!

जिन्दगी

बडे घर के विशाल फाटक के सम्मुख खडी पुष्पा को अपना छोटा कद और छोटा लगने लगा। सकपकाई सी खडी वह सोच रही थी कि अब क्या करे? गाव से साथ आई पडोसिन उसे छोडकर जा चुकी थी और तागे वाले ने भराम के स्वर मे कहा था कि सेठ रामप्रसाद का बडा घर यही है। फिर भी पुष्पा जैसे साहस न सजा पा रही थी उस विशाल फाटक के भीतर प्रवेश कर पाने का।

कुछ सकपकाए क्षण एसे ही बीते कि एक सिख दरवान भीतर से फाटक की ओर आया। उसने पुष्पा से पूछा 'क्या बाई, यहा क्या खडी हो?' सकपकाई पुष्पा ने हकलाए स्वर मे कहा सत्तो बुआ से मिलना है।

बड़े घर के नौकर चाकरो मे भी मालिक का रौब अंशत आ जाता है—विशेषकर एसे अवसरो पर जब वे अमीर मालिक के किसी गरीब रिश्तेदार को सकपकाया पाते हैं। दरवान ने कुछ अनुमान लगाया और पूछा 'अरे कौन सत्तो बुआ, बाई यहा इस नाम की तो कोई भी महरी कहरी नही है।

'सत्तो बुआ यहा की मालकिन है हमारे फूफा रामप्रसादजी हैं इस बडे घर के मालिक। सत्तो बुआ हमही गाव की बेटी हैं न। वो हमारी बुआ है, सगी बुआ।' पुष्पा का गला सूख रहा था फिर भी उसने जोर लगाकर कहा।

दरवान का अनुमान सत्य निकला। तो यह बाई मालकिन की सम्बन्धी है और वो भी सगी! मूछो मे मुस्कराकर बोला 'अच्छा, मालकिन सत्यवती जी है तुम्हारी सत्तो बुआ। ठीक है ठीक है चलो भीतर उनके पास पहुचाए देता हू।'

गाव के मिडिल स्कूल मे दजा पाच तक पढी पुष्पा को अपनी

भूल का अहसास शम से दवा गया। सत्तो बुआ कहा उसने, सत्यवती कहना था। दरबान की चुस्त वर्दी और रोबीला स्वर पुष्पा को आतकित कर गया था।

दरबान के पीछे-पीछे सहम भारी कदमो मे चलती पुष्पा भीतर पहुची। एक के बाद एक कई कमर पार करती जब वह एक सज सजाए बटे कमरे मे पहुची तो अपन हाश हवास खो चुकी थी। दरबान का, 'मालकिन ये आपसे मिलने आई है' कहता स्वर उसे किसी और लोक म जाता जान पडा।

बडे घर की मालकिन अपने आकार-प्रकार मे उस बडे घर के अनुरूप ही थी। रेशमी साडी म वप्टित विशाल काया तो पुष्पा की परिचित न थी, किन्तु गाल मुख पर बठी नाक और छोटी आखें निश्चय ही उसी सत्तो बुआ की थी जिसे बचपन म घरवाले सब 'चीनी' कहकर चिढात थे।

'अरे पुष्पिया है' सत्ता बुआ का खनकता स्वर पुष्पा को होश म ले आया। 'अरे! कस आई कब आई?' बुआ पूछ रही थी और हाश मे आती पुष्पा उस क्षण साच रही थी कि यदि दरबान उसे पुष्पा जी कहे ता कसा लग?

झुकी गरदन का बुआ के परिचित स्वर के सहारे ऊचाकर पुष्पा ने उत्तर दिया, 'अभी आ रही हू बुआ, पडोसिन काकी छोड गई है। तुम्ह दखने को इतन दिन म बहुत जी चाह रहा था सो चली आई—' गल तक आइ रुलाई का पुष्पा ने रोक ही लिया, समझ गई थी कि इतन वर्षों बाद मिली सत्तो बुआ अब बडे घर की मालकिन सत्यवती जी ह उनस दया की ही आशा की जा सकती है, आत्मीयता की नहीं।

'और मास्टर जी कस है! बच्चे कितने हैं?' बुआ जसे पूछने के लिए पूछ रही थी।

सब ठीक है बुआ, तुम्हारे आशिरवाद से और बच्चे तो जल्दी जल्दी हो गए सो पाच हैं। तीन लडकिया दो लडके और '

'और छवा पट म है, रामजी की दया से, क्यो?'

बुआ ने उपहास किया था या साधारण हसी की बात कही थी, पुष्पा समय नही पाई। पर अब तक उसमे बुआ का नजर भर देखने की हिम्मत आ गई थी।

सत्तो बुआ पुष्पा की समवयस्का थी। शुरू से ही गदबरी देह और गोठिल दिमाग की बुआ छरहरी और चतुर पुष्पा से हर बात मे पिछड जाती थी। दादी के शब्दो म झाटा बखेरकर बदरिया-सी घूमती सत्तो' किसी काम की न थी, जब कि सुघडता से हर काम का करन वाली पुष्पा का देख उनका जी जुडा जाता था।

बुआ, भतीजी का विवाह भी एक वष मे कुछ समय के अन्तर से हुआ था। सलोनी और सुघड पुष्पा की डोली पहले उठी। गाव की एक सम्मानित वृद्धा ने अपने दसवी तक पढे इकलौते पुत्र नरन्द्र के लिए पुष्पा को आग्रह से चुन लिया। वृद्धा के पास धन नहा था किन्तु योग्य पुत्र की सम्भावित आशाए भरपूर थी और इन्ही सम्भावित आशाआ के कारण उस समय पुष्पा का भाग्य ईर्ष्या योग्य माना गया था। किन्तु भाग्य ने पुष्पा के साथ छल ही किया। नरन्द्र का बहुत हाथ पैर मारने पर प्राइमरी स्कूल की मास्टरी ही मिली और मिला तपेदिक जसे रोग का अभिशाप। घर की सारी जमा पूजी हामकर और काफी कज की आहुति देकर नरेन्द्र को प्राणा का वरदान तो मिल गया साथ ही अभिशापो की श्रृखला अटूट सी चलने लगी। कभी न चुकने वाले कज और कभी न पूरा पडन वाला खच की लौह श्रृखला मे कसी पुष्पा तन मन की चेतना खोती गई। पाच बच्चा को जन्म देकर उसकी रग रग निर्जीव हा गई और उनके पालन पोषण की चिन्ता म उसके प्राण जजर। दन्य और दुदशा की जोको न पुष्पा का सारा जीवन रस चूस लिया। अब बुआ के सम्मुख बैठी उनके 'कस आई' के उत्तर मे वह क्या बताती कि जीवित मृत्यु के उस दमघोटू वातावरण से अचेत-सी अवस्था म निकलकर वह कैसे आ पाई है। नरन्द्र का सूखा पीला चेहरा और पाचा बच्चा की निरन्तर कतरने वाली चीख-पुकार इस समय भी वह भुलाए नही भूल रही थी।

पुष्पा के विवाह के बाद दादी को और चिन्ता हो गई थी, भाटा बखेरकर घूमने वाली बदरिया सी सत्तो की। तभी सेठ रामप्रसाद की तीसरी पत्नी भी बिना उत्तराधिकारी दिए उन्हें छोड़ गई। तीसरी का स्थान रिक्त होते ही चौथी की खोज हुई और सेठ परिवार के पंडित की नजर पड़ी सत्तो पर। सत्तो का पुष्ट शरीर ही उसकी सबसे बड़ी 'क्वालिफिकेशन' थी। सेठ रामप्रसाद चालीस को पार कर रहे थे। सत्तो का पुष्ट शरीर, घी, दूध से पुष्टतर होकर, रेशम और मखमल में सजकर शीघ्र ही सेठजी के अनुरूप हो जाएगा, यह पण्डित जी की अनुभवी आंखों ने भाप लिया था। वे तीसरी और दूसरी सेठानी को बहुत थोड़े समय में ही तन्वंगी से थुलथुल होते देख चुके थे। सेठानी के रिक्त स्थान की पूर्ति फिर हुई और सत्तो सेठ रामप्रसाद के बड़े घर की मालकिन बनकर चली आई। सत्तो ने पंडित जी को निराश नहीं किया। उनकी आशा के अनुरूप वह दो ही वर्ष में सेठजी के पार्श्व में सजने लगी। किन्तु सत्तो भी मालकिन ही बन सकी, मां नहीं।

इतने वर्षों के बाद सत्तो बुआ को देख पुष्पा को चक्कर से आ रहे थे। नजर भर बुआ को देखा तो पुष्पा ने पाया कि बुआ का सांवला वर्ण चिकना हो आया है, बैठी नाक झलमलाती हीरे की लौंग के सहारे जैसे कुछ ऊपर उठ आई है। छोटी आंखों में तृप्ति की चमक है। बुआ की आंखों से होती हुई उसकी नजर सामने लगे आदमकद आइने में अपने प्रतिबिम्ब पर ठहर गई। फीका चेहरा, सूखे पपड़ाए होंठ, हड़ीला शरीर और बुझी-बुझी आंखें—पुष्पा ने घबराकर नजर हटा ली।

सहमा पुष्पा को लगा कि उसे भी तो कुछ पूछना चाहिए। सूखे होंठों पर जीभ फेरकर, साड़ी के आंचल को मोड़ती खोलती बोली, 'बुआ तुम—आप कैसी हो?'

सत्तो बुआ आज भी पुष्पा की समवयस्का थी और सगी बुआ भी, किन्तु सोफे पर पसरी बुआ और फर्श पर कालीन में धंसी सी पुष्पा में 'तुम' से 'आप' का वह अन्तर आ चुका था। पुष्पा के प्रश्न

को अनसुनाकर बुआ ने आवाज लगाई, 'अरे कोई है, ड्राइवर से बोलो गाडी निकाले। हम सेठ भानामल के यहा मौत म जाना है।' और अनमने स्वर मे पुष्पा स पूछा 'तू तो अभी ठहरेगी ?'

उत्तर म पुष्पा के मुह से जाने कसे निकल गया, 'नही बुआ कल सवेरे चली जाऊगी।' वह सोचकर तो आई थी कि दो चार दिन बुआ के पास ठहरेगी, बुआ कितनी भी बडी हो गई हा—हैं तो उसकी सत्तो बुआ! किन्तु कुछ ही देर मे इस खुले हवादार बडे कमरे म उसकी सास उसस अधिक घुटने लगी थी जितनी बन्द सन्दूक सी अपने घर की कोठरी म घुटा करती थी।

इतनी जल्दी पीछा छुटने की बात से जसे उल्लसित होकर बुआ अपनेपन से बोली, अरे हा बाल बच्चा को छोड आई है न, ठीक है कल चली जाना। आ तुझे कुछ कपडे दू, तेरे काम आ जाएग।'

बुआ की पुकार पर जिस स्त्री ने कमरे म प्रवेश किया उसकी उजली सफेद साडी से प्रभावित होकर पुष्पा ने सिर झुकाकर झट म नमस्ते की। घबराहट म वह बुआ का अभिवादन न कर सकी थी इसीलिए इस बार सतर्क थी। अरे यह तो हमारी दाई है,' बुआ हसी। पुष्पा सकोच से दुहरी हो गई।

दाई नौकर ऐसे उजले कपडे पहनते हैं! उसकी अपनी चाव म खरीदी और पहनी गई पूरे दस रुपये की साडी उस ओर भी मली और भद्दी लगने लगी। दाई को अपनी ओर ध्यान स देखती पाकर पुष्पा न अपनी साडी में अपने तलुओ को ढक लिया, फिर भी उस लगता रहा कि वह उघड गई है उघडी जा रही है

बुआ न लोहे की अलमारी खोली और साडियो के ढेर म स चार साडिया पुष्पा के लिए निकाल दी साथ म चार ब्लाउज भी बोली, मेरे ब्लाउज है, छाट कर तना इनम तेरे ब्लाउज मजे म निकल आएग। साडिया पहनी हुई हैं पर तेरे तो खूब काम देंगी।' चाभी का ताली का गुच्छा कमर में खोसती बुआ दाई को पुष्पा को गिला पिलाकर पिछवाडे की कोठरी म सोने की व्यवस्था कर देने का आदेश देकर चली गई।

पिछवाडे वरामद म पुष्पा खान बैठी । अरहर की घी पडी दाल देखकर वह सारे दु ख भूल गई साथ म बारीक चावल का भात भी था। मालन पर दाई न नीबू भी ला दिया। नीबू पडी दाल के लिए पुष्पा बरसो से तरस रही थी। गाव मे नीबू बडे महगे थ और उसके साथ घी पडी दाल और बारीक चावल के भात का सयाग पुष्पा के लिए मात्र कल्पना की वस्तु बनकर रह गया था।

नौकरो की उस छोटी कोठरी मे साफ सुथरी दरी पर खा-पीकर बठी पुष्पा न बहुत दर बाद चन की साम ली। बुआ के सजे सजाए बडे कमरे म यह छोटी कोठरी पुष्पा को अधिक अपनी लगी। स्वादिष्ट भोजन की तप्ति बुआ की उपक्षा के दश को हलका कर गई थी। आज की सारी रात अपनी है जान कितने वर्षों बाद वह आज इतनी साफ सुथरी दरी पर चन की नीद सो पाएगी, यह कल्पना पुष्पा को अनिवचनीय सुख का आभास द रही थी। स्वादिष्ट भोजन की तप्ति और चन की नीद की कल्पना के साथ पूरी चार साडिया और चार ब्लाउजों की प्राप्ति न उसकी खीझ और ऊब स भरी जिन्दगी म रस घोल दिया था।

कोठरी का दरवाजा भीतर से बन्दकर पुष्पा ने साडिया का निरखना परखना आरम्भ किया। बचपन म अब तक उस पूरी चार साडिया एक साथ मिली हो, यह सम्भव नही हो पाया था। हा, विवाह म पाच साडिया अवश्य मिली था।

एक साडी गुलाबी रंग की चौडे काल बाडर की थी दो छाप की महीन कपडे की और एक अच्छी खासी रेशमी थी जिसपर रेशम के बूट कढे थ। पुष्पा सोच रही थी कि छाप की साडिया तो वह तब पहनगी जब दोपहर म पास पडोस म जाना होगा। एसी महीन साडिया गाव म उसकी परिचिता म किसीके पास न थीं। रेशमी साडी विवाह आदि के अवसर के लिए धरी रहगी। ऐसी एक रेशमी साडी क अभाव मे विशेष अवसरो पर वह मन ही मन कितना रोई थी। और यह गुलाबी साडी तो वह नरे द्र के लिए पहनगी उसे खूब याद था कि बरसो पहले ऐसी एक गुलाबी साडी मे उसे

देखकर नरेन्द्र ने कहा था, 'आज तो तू पानू हलवाई की बरफी सी मीठी लग रही है ' इन चार साडियो के सहारे तो कम से कम दो वर्षो के लिए उसकी बेरग जि दगी मे अनेक रगीन क्षण आते रहेग

साडिया को करीने से लपटकर सिरहाना बनाकर लेटी पुष्पा नीद से बोझिल आखा से उन्ही रगीन क्षणो के सपने देखती रही।

नीबू पडी दाल और बारीक चावल के भात का दुलभ भाजन भर पट खाकर चार साडी और ब्लाउजो की अलभ्य सपदा पाकर, जीवन मे बेतरह ऊबी और खीझी पुष्पा का आज, रात भर के लिए ही सही, जि दगी बडी अच्छी अच्छी लग रही थी।

प्यार

सवेरे-सवेरे ऊपर मै बाथरूम मे थी, नीचे पडित पडितानी म महाभारत मचा हुआ था।

पडित कह रहे थे, आज तो तनिक पुदीने की चटनी बना दे पडितानी, जी ठीक नही है, कल बिटिया की दावत म ज्यादा खा गया सा तबियत बिगड गई।

'हा-हा, क्या नही बना दू पुदीन की चटनी ? इस महगी के जमाने म पूरे दो आन लगेंगे और तुमने कुबेर का खज़ाना सौप दिया है न हम जो रोज़ हुकुम चलात हो ये बना द, वो बना दे।' पडितानी चीख रही थी।

पडित वमे तो नरम स्वभाव के थे पर जब गरम होते तो पडितानी पर हाथ चला बठते और फिर पोथी पत्रा लेकर जा निकलते तो दर तक घर न लौटते। पडितानी रोती धोती तो यूँही पर मान के मारे खाना छाड बैठती और तब खाती जब पडित फिर हाथ न उठान की सौगन्ध खाते। किन्तु पडित बार बार सौगन्ध तोडते, पडितानी बार बार खाना छाटती—मै कई वर्षो स देखती आ रही थी।

वही फिर हुआ, 'तड' स आवाज़ आई और मैंने समझ लिया कि पडित न वेलन, चिमटा या फिर अपना हाथ ही दे मारा है।

बाथरूम मे खडी-खडी मैं महाभारत सुन रही थी और सोच रही थी कि आज नहाऊ या न नहाऊ। पिछली रात हमने अपने विवाह की पहली वषगाठ मनाई थी। कुछ अतरग मित्रो को खान पर बुलाया था और उनकी शुभकामनाओ के बीच मैं प्रथमेश स सटी बठी थी—फिर रात देर तक हम एक दूसर की बाहो मे खोए रह थे इसीलिए आज जी चाह रहा था कि प्रथमेश की सासो का स्पश लिए इन

अगा को वैसा ही रहन दू और मेजुअन 'नीव' लेकर माग दिन अपनी सुहाग मज म समाई रहू । दखू, प्रथमश मे क्ट कि व भी आज 'नीव ले लें मरे निकट वन रह और मैं बिना नहाइ बाथरूम मे निकल आई ।

खाने की मेज पर प्रथमश स्लाइस पर मक्खन लगा रहे थे, मुझे देखकर भी निर्विकार बन नाश्ता करते रहे । मैं जानती हू बडे पक्च अल है वे, अपनी ड्यूटी के प्रति अत्यन्त सचेत भी । वे कॉलिज इतने ठीक समय से पहुचत कि मैं उनसे विनोद किया करती, तुमसे ही लोग घडी मिला लिया करें तो कभी गलती न हो ।'

वे कॉलिज क लिए लगभग तैयार थे फिर भी मैंने कहा 'डियर क्या आज रुक सकोगे लीव ले लो न, मेरी खातिर ।'

उत्तर मिला 'नहीं सरो, आज मेरा इम्पार्टेन्ट क्लास है, मिस करना ठीक नहीं ।'

बहुत बुरा लगा मुझे, इतना भी ख्याल नहीं रख सकते मेरा मैं उल्टे पैरों बाथरूम म चली गइ और देर तक नहाती रही ।

वे प्रथमेश—प्रथमेश ठाकुर। म सरोज—सरोज वर्मा। व बगाली, मैं कायस्थ—हमारा प्रेम विवाह हुआ था ।

प्रथमश के माता पिता भाई बहन कोई नहीं था । अनाथ प्रथमेश अपने पिता के एक मित्र के सरक्षण म पले किन्तु अपनी असाधारण प्रतिभा के बल पर बढे । उन्होंने दर्शन एम० ए० म सर्वोच्च स्थान पाया था फिर तीन ही वर्ष म डाक्टरेट' भी कर ली थी । उन्हें 'लेक्चरर' हुए चार वर्ष हो चुके थे, 'युनिवर्सिटी सर्कल' म उनका नाम सम्मान से लिया जाता था । मैं हिन्दी की लेक्चरर होकर उन्हीके कालेज म नियुक्त हुई ।

एक डिबेट मे हम दोनों निर्णायक थे । किसी प्रश्न पर मुझसे और प्रथमश म बहस हो गइ थी । बहस के अन्त मे वे हस पडे थे मान गया आपको मिस वर्मा मैं अपनी हार स्वीकार करता हू ।

फिर उन्होंने चाय के लिए आमन्त्रित किया और एकदम प्रपोज कर बैठे मेरा अपना कोई नहीं मिस वर्मा क्या आप मेरी हो

सकेंगी ?'

मैं आश्चर्य और हर्ष से अवाक् रह गई थी। जब से मैं कॉलेज मे आई प्रथमेश मेरी आखो मे समा गए थे। उनका सुदर्शन सौम्य व्यक्तित्व मेरे एकान्त क्षणो को सपनो से भर देता। उनसे साधारण औपचारिक परिचय ही हो पाया था पर वे जब भी सामने आते हृदय की धडकन तेज हो जाती। उनका-सा ही मेरा भी कोई न था, माता पिता भाई बहन कोई नही। मैं भी अकेली थी और किसीको अपना बनाने के लिए आतुर भी। प्रथमेश को जब भी देखती बरबस चाहने लगती कि क्या वे मेरे अपने हो सकेंगे ?

उन क्षणो प्रथमेश के प्रत्युत्तर मे इतना ही कह सकी थी 'यह मेरा सौभाग्य होगा' और प्रथमेश ने अपनी दोनो हथेलियो मे मेरी हथेलिया को भर लिया था।

उसके बाद भी हमने विवाह के लिए पूरे एक वर्ष प्रतीक्षा की थी। प्रथमेश चाहते थे कि समय हमारे आवेश को सयत कर दे। प्रथमेश के सयत व्यक्तित्व ने मुझे भी सयत कर दिया था। वह पूरा एक वर्ष हम एक दूसरे के सपनो मे जीते रहे। फिर विवाह हुआ हमारे सपने सच हो गए।

बाथरूम मे देर तक नहाती पानी की ठडी धार से भीगती मैं उन मधुर क्षणो मे भीग इस निकटता को धो डालना चाहती थी जो हमारे बीच अचानक आ जाती थी। अभी उस दिन ही तो प्रथमेश ने टोमटो सॉस मागा था और मुझे खाने के बीच मे से उठकर देना पडा था। बुरा लगा था मुझे क्या वे स्वय नही ले सकते थे जब कि उन्हे मालूम था कि इनविजिलेशन करने के कारण मैं बेहद थकी हुई थी। प्रथमेश का किंचित भी विरोध मेरे प्रबुद्ध नारीत्व के लिए चुनौती बन जाता था।

नहाकर मैंने चाहा कि सहज होने के लिए प्रथमेश के पसन्द की नीले फूलो वाली जारजेट की साडी पहन लू। पहनी भी, फिर तुरन्त उतारकर अपनी पसन्द की गुलाबी सिल्क की पहन ली।

तैयार होकर कॉलेज जाने के लिए मैं नीचे उतरी तो टोमटो सास

म ही उलझी हुई थी। देखा, पडितानी पुदीन की चटनी पीस रही हैं। हाथ ठीक से नहीं चल रहा था, शायद हाथ म ही चोट लगी थी। वे मुझे देखकर सकुचाई सी हसी, 'बिटिया' पडित पुदीने की चटनी का कह गए है सो ज़रा बना दू।'

'ठीक है अम्मा मार खाती जाओ, चटनी खिलाती जाओ।' मैं तिक्तता स बाली। सोच रही थी कि उस दिन मुझे टामटा सॉस की बोतल फश पर दे मारनी थी।

मैं पडितानी का अम्मा कहती थी। सुना था जब मैं अगूठा चूसती थी एक अधरी बरसाती रात म वे पडित का हाथ थामे हमारी चौखट पर आ खडी हुई थी। घर म केवल मरी मा थी और मैं पिता हम दाना को सदा के लिए छोडकर जा चुके थे। विधवा मा टूटे सपना के बीच मुझे छाती स सटाकर जी रही थी। व सिद्धा तवादिनी थीं।

पडितानी स मा न परिचय पूछा, उत्तर मिला—मैं कुलटा हू बीबीजी पति को छाडकर इस ब्राह्मण के साथ चली आई हू। पति क घर म सब कुछ था पर पति न केवल सौदा किया था, मर तन का। जैम व लाखो का व्यापार करते थे उन्हान मुझे भी खरीद लिया था। मेरा मन उनम कभी नहीं मिला। मैं मेव खाती, रशम पहनती लेकिन तडपती रहती। पडित उस बडे घर म पूजा पाठ करन आत थ। इन्हे देखा इनके भोलेपन ने मोह लिया। मैंन घरबार छाडा ता पडित न भी अपनी लगी बधी राटी छोडी। हम वह शहर ही छाडकर चले आए हैं। आप चाहा ता हमे बसा ला बीबीजी, लेकिन मैं कुलटा हू सा बना दिया' मा न मुझे सब बताया था।

पडितानी की स्पष्टाक्ति न मा का मोह लिया' पडितानी की आपबीती मा तक ही सीमित रही। पडित-पडितानी नीचे की कोठरी म बस गए। हम ऊपर की मजिल पर रहते थे। मेरे पिता हमार रहन क लिए मकान और जीवित रहन के लिए एक बडा मकान छाड गए थ जिसका किराया हमारी आजीविका था।

उनकी चुप्पी मेरी खिन्नता को आक्रोश बना देती किन्तु वे फिर भी चुप ही रहते। यह चुप्पी तब टूटती जब मैं सहज हो जाती। पर हर बार सहज होने के प्रयास में मैं और असहज होकर रह जाती थी।

शायद प्रथमेश भी थके थे, बोले 'मेरा, तुम चाहो तो वहां जा सकती हो, मैं रेस्ट करना चाहूंगा।'

मैं और भी जल गई और बिना उत्तर दिए बेडरूम के द्वार भड़ाक से बंद कर मैंने अपने आपको बंद कर लिया।

पंडितानी अम्मा के आग्रह पर ही मैंने बेडरूम खोला और खाना खाया। प्रथमेश अब भी चुप थे। एक ही रात पहले तो हमने अपने प्रेम विवाह की पहली वर्षगांठ मनाई थी और आज यह अबोला लिए ऐसे हो गए थे जैसे थक गए हों। इस बार जब तक ये क्षमा नहीं मांगते मैं इनसे नहीं बोलूंगी मैंने निश्चय कर लिया था।

काफी रात हो गई थी, प्रथमेश डबल बैड पर मेरे पास ही नींद में डूबे हुए थे। किन्तु मेरी आंखों में नींद नहीं थी। मुझे प्रथमेश का व्यवहार शत-शत दंश बनकर चुभ रहा था। मेरी खातिर ये एक दिन भी मेरे निकट नहीं रह सकते और क्षमा याचना भी नहीं।

बारह बज रहे थे, नीचे किवाड़ खटके। पंडित आए होंगे। चलूं देखूं तो। मैं उठकर बालकनी में आई, नीचे झांका। पंडित ही थे। झोले में से एक शीशी निकालते पंडित बोले, सबेरे ज्यादा लग गई पंडितानी, ले ये दवा लगवा ले, चोट ठीक हो जाएगी।'

'पहले तुम ये गंडा बंधवा लो। दोपहर हनुमान मंदिरवाले बाबाजी से लाई हूं। तुम आजकल कम खा रहे हो, मरी जाने किसकी नजर लग गई। पंडित को खटिया पर बैठाकर पंडितानी उनकी कलाई पर गंडा बांध रही थीं।

मेरे सिर का दर्द और बढ़ गया था और मैं सोच रही थी कि प्रथमेश नहीं झुकते तो मैं क्या झुकूं?

प्रेम-पत्र

लाखी का वह दिन, व घडिया सुहाग की रात सी याद रह गइ , अपनी काठरी के पिछवाडे खुले म बठी लाखी जाडे की धूप मे गरमा रही थी। जाडे की धूप लाखी को एक वरदान-सी लगती। गम कपडो क अभाव म जाडे की ठडी रात तो काट न कटती किन्तु दिन गम धूप के सहारे बीन ही जान। कोठरी के पिछवाड जब वह धूप सोना बरसाती तो लाखी के ध्यान म उसका माना नही, उसकी वह सुखद उष्णता ही समाई रहती, जो कलुआ म मिली मार मे दुखत उसके अगा का सेंक दती थी।

ऐसी ही एक जाडे की दोपहर मे लाखी गरमा रही थी। वगल मे पडा सो रहा था बडका उसका चार साल का पहला पुत्र और गाद म था छुटका उसका दो वष का दूसरा पुत्र। छुटका कभी स्तन खीचता कभी आचल—और कभी मा की गोद को किलकारियो से भर देता। उस अभागे को क्या पता था कि उसकी इक्कीस वर्षीया मा असमय म ही इकसठ की हो चुकी है। लाखी का रौंदा हुआ पत्नीत्व मातत्व म उत्लसित न हो सका था। बच्चे जन्मे है तो पालने ही पडेंगे इसी भाव म वह उनकी देखभाल करती। लाखी के विगत न उसकी सज्ञा का ऐसा जड कर दिया था कि अब वह एसा वतमान थी जिसका कोई भविष्य नही होता। बडका और छुटका को बाप का कालापन और मा का मलोनापन विरासत मे मिला था। अधिकतर नगे धडग घूमते वे काले किन्तु चिकने पत्थर म निर्मित शशव के प्रतिमान म लगत। बस्ती वाले उनके कालेपन पर हसत तो उनके सलोनेपन पर दुलार भी लेत।

दोपहर ढलन लगी थी। लाखी को तीन बजे गरस हॉस्टल की

नौकरी पर जाना था। वह सुबह शाम वहां बतन माजन जाया करती थी। समय हो रहा था और वह उठने ही वाली थी कि उसन सुना कोई पूछ रहा था—'क्या कोई लाखी है यहां, उसके नाम की चिट्ठी है। 'लाखी' 'चिट्ठी' लाखी को अपन कानों पर विश्वास न हो रहा था फिर भी वह उठी, बढकर देखा तो पोस्टमन था। 'लाखी मेरा नाम है भैया पर मुझको कौन पत्री भेजगा ' लाखी कह भी रही थी, सोच भी रही थी। 'अरे कोई है, जिसन लिखा है लाखी भौजी को मिले। वाह, जैसे उसकी भौजी जगत भाजी है ' कहता पोस्टमैन जब चिट्ठी लाखी के कापते हाथों मे थमाकर बढ गया तो लाखी को अपनी आखो पर विश्वास न हो पा रहा था।

सचमुच की चिट्ठी और वह भी उसके नाम लाखी घबराहट म भी पुलक उठी। लेकिन जब वह क्या कर चिट्ठी म क्या लिखा है इस जानन क लिए वह अधीर हो उठी। उस ध्यान आया कि हॉस्टल की वाडनजी स क्यो न चिट्ठी पढवा ल। व उसपर सदय रहती है उन्होन ही उसे हॉस्टल के काम पर रखा था।

हॉस्टल तक पहुचने म जितना समय लाखी को लगा उतने समय वह यही सोचती रही कि यदि सचमुच मे यह चिट्ठी उसक लिए है तो तो लेकिन इसक आगे वह कुछ सोच भी तो नही पा रही थी।

प्रौढा वाडन अपने निजी कमरे म कोच पर बठी कोई पत्रिका पढ रही थी। लाखी सर झुकाए सिमटी उनके सामने जा खडी हुई। उन्होन पूछा—'क्या है री लाखी ?' तो उत्तर म लिफाफा बढाकर लाखी और भी सिमट गई।

वाडन पत्र पढ रही थी और लाखी बेहोशी म सुन रही थी या सुनकर बेहोश हुई जा रही थी, इसका निणय करना कठिन था। लेकिन वाडन साफ साफ पढ रही थी और लाखी साफ साफ सुन रही थी—

लाखी भौजी को दवर रमेसुर का राम राम पा लागी। आगे हम यहा राजी खुसी है आपकी राजी खुसी नक चाहते हैं। आग

भौजी हमे आपकी बहुत याद आती है। आगे आपसे एक विनती है। भौजी हम बिना मा बाप के है सो अपने मन की किससे कह। मन की आपसे कह रहे है आसा है आप पूरी करेंगी। भौजी हमरा बियाह करवाय दीजिए। उस दिन जब आप हमका गरम परौठा और भाजी खिलाय रही थी तो हमार मन मे यही बात उठ रही थी कि आपमी किसीसे हमार वियाह हो जाव। आप कितनी अच्छी हो भौजी परौठे कितने अच्छे बनाती हो। जब स मा मरी हम ने कभी परौठे नही खाए। आप को दख कर मा की याद बहुत आय गई और यह बात भी मनवा मा बार-बार उठी कि वियाह होवै तो आप जैसी मिले। आप हसती हो तो गोड छू लेवै का जी होय उठत है। सो भौजी हम अपनी बात आपसे कह रहे है। कल्लू दादा से तो उस दिन भेंट हो नही सकी। आप ही उनसे कहिएगा और हम तो अपनी बात आप पर छोड रहे हैं और आपका हम कभी नाही भूल सकत है और बडका छुटका के प्यार, कल्लू दादा के परनाम और इस पते पर चिट्ठी दीजिएगा। पढना समाप्त कर बाइन ने लाखी की ओर देखा और देखती रह गई लाज भर उल्लास ने लाखी के सलोने सावले मुख पर मोहक रग बिखेर दिए थे।

बाइन कुछ पल चुप रही, फिर हसी—'अरे लखिया, तू तो एमी लजा रही है जसे यह कोई प्रेम पत्र हो। अब जा अपने काम पर लग, नही तो देर हो जाएगी ' और वे पत्र को फश पर फेंककर फिर पत्रिका पढने लगी।

पत्र को अपनी अगिया मे खोस जब लाखी कमरे से बाहर निकली तो सहसा सोलह वष की वह तरुणी हो आयी थी जो अपनी मुस्कान पर आप मुग्ध हो उठती है और अपनी लाज पर स्वय ही लाज आती है। उन क्षणो न वह मजदूर कलुआ की निष्प्राण 'मेह-रिया' थी न बडका छुटका की निर्जीव 'माई', वह सहसा एक जीती-जागती भौजी' बन गई थी

बतनो के ढेर पर यन्त्र से चलते लाखी के हाथो मे आज चेतना

जाग उठी थी वतना स टकराती चूडियों की खनखनाहट म याझ सी बजन लगी थी और वह रमेसुर की सोच रही थी

उस साझ लाखी सरकारी नल स कलसी भर कर लौट रही था कि साय के झुटपुट म किसीन युवक उसके पैर छू लिए। लाखो ऐसी मकपकाई कि कलसी गिरत गिरते बची। यदि कोई उस एकाएक मार बठता ता वह उतना न अचकचाती किन्तु एस पैर ता उसक कभी किसीन कभी न छुए थ। आगन्तुक कह रहा था 'हमार नाम रमेसुर है भौजी। हम भी कल्लू दादा के हो गाव स आय रह है। उन्ह सायत हमार सुध नाहीं हो मुदा हम का ऊ खूब याद है। जान पडा कि ऊ इहा ह सो भटन आय गए।'

लाखी स्वागत म कुछ न कह सकी भीतर गई और लाट म गुड का शबत घालकर ले आई। शबत पीते पाहुने का लाखी न दखा सो कारी कमीज और धाती पहने वह युवक उस भला ही लगा। गहरा सावला रग, हलकी मछे और शर्मीली आखें जो लाखी के सामन भी नहीं उठ पा रही थीं।

लाखी अब भी चुप थी। रमेसुर ने ही फिर कहा—माई बाबू पिलेग म चल बस भौजी। हम घर स बेघर हो गए। कोई सर पर हाथ धरै वाला न रहा। सोचा मिलटरी म भरती होय जावैं। सो भगवान ने सुन ली। भरती होय गए है। आग की भगवान जान। इसी रात की गाडी स जाय रहे है कल्लू दादा आ जात तो भेंट हो जाती'

लाखी के मन मे ममता जाग उठी। ऐसा भला सा भया और फउज म भरती होय गवा, काली माई कुसल करें।' लाखी की आखो म मा जाय माई का एक कल्पित चित्र उभर आया। हौल स बोली—ऊ तो रात गए आवगे पर तुम बालू कर के जाना।

गम परौठ और भाजी स उस कुछ दर क स्वर का सत्कार करती भौजी का व क्षण अपने चोट खाए अगो पर मरहम स लग। रमेसुर कलुआ के आन के पहल ही चला गया। कलुआ स लाखी ने जब रमेसुर का जिक्र किया तो वह चिल्लाया, कौन ससुर रमेसुर'

ससुर का तूने इस महगी म ब्यालू करवाया, अब इसे कौन भरेगा ? तेरा बाप ?' और उस सत्कार के पुरस्कार मे मिनी कलुआ की वह लात जिसने उस मरहम का फिर क्षत विक्षत कर दिया। बात आई गई हो गई किन्तु उमी ससुर न साल भर बाद यह चिट्ठी लिखी

वाइन जी ने कहा था अर लखिया तू तो ऐमा लजा रही है जसे यह कोई प्रेम पत्र हो ' प्रेम पत्र पिरम पत्तर हाय राम वतन मलती लाखी न राख भरे हाथा स उस अकेले म घूघट खीच लिया। बिसरा ससुर, उस पत्र के द्वारा फिर लौट आया था और बार-बार कह रहा था आप हमतो हा तो गाड छू लेवें का जी हाय उठत है

लाखी जानती थी कि वह ससुर के ब्याह के सम्बन्ध म कुछ नहा कर सकती। कलुआ से पत्र की चर्चा भी करना उम अपन को जी भर कर पीटन का यौता देना था। वह स्वय इतनी अकेली इतनी भयभीत थी कि किसीसे साधारण बात ता कर नहीं पाती थी। ब्याह की इतनी बडी बात कमे करती ? किन्तु यह पत्र मिलन के, पढे जान के, और उसके बाद की सारी रात के वे क्षण लाखी का सुहाग की रात से याद रह गए

सावली सलानी लाखी हसती तो कपाला पर सलानेपन के भवर पडन लगत और चुप रहती तो वह सलोनापन सुघर चिबुक पर स्थिर हो जाता। निमल दत पक्ति स होड करती निश्छल आखे— देखन वाला को एक बार और दखने के लिए विवश कर देती।

पितहीना इसी लाखी को काले कलुआ के हाथ, दो सौ रुपय लेकर सदा के लिए सौप दन वाली विमाता न अपनी क्रूरता के साथ अपनी उस ईर्ष्या का भा सतुष्ट कर लिया था जो लाखी के सलोनपन के कारण उमे जलाया करती थी।

कलुआ कानपुर की मिलो म काम करने वाले हजारो मजदूरा मे से एक था, किन्तु उसकी दो विशषताओ का जवाब नहीं था— एक ता उसके काली स्याही से काले स्याह रग का और दूसरी उसकी

बेजोड चिडचिडाहट था। उसके साथी उसे कटखना कहते, जो बात पीछे करता है पर काटने को पहले दौडता है। और तो और वह स्वयं पर भी चिडचिडाया करता। भूख लगती तो पेट को गाली देता प्यास लगती तो पानी को कोसता। बडबडाता खाता, गुर्राता उठता और यही कलुआ जब ठर्रा चढा लेता तो बिना मारपीट किए शायद नशे के पूरे आनन्द से वंचित रह जाता। लाखो के मिल जाने पर उसे मारपीट का वह आनन्द भी मिलने लगा जिसमे पीटने का सुख ही सुख था, पिटने का दु ख कभी नही।

तेरह वर्ष की सावली सलोनी बालिका वधू लाखो को पीछे पीछे लिए जब बत्तीस वर्ष का काला कटखना कलुआ बस्ती मे आया तो उन केवल पेट के लिए जीने वालो के कलेजे भी कसक उठे। स्त्रियो ने सहानुभूति से और पुरुषो ने स्पर्द्धा से एक ही बात कही, 'बन्दर के गले म मोतियो की माला ।'

बन्दर के गले म मोतियो की माला की यह उक्ति लाखो के सदभ मे अक्षरश सत्य हो गई। कलुआ वह ठूठ था जो सारी बर-सात बीत जाने पर भी हरा नही होता। उसने लाखो को ब्याहा हो नही खरीदा था, जैसे कसाई गाय को खरीद लेता है। लाखो कलुआ की कसाई दष्टि म केवल वह गाय थी जिसका मूल्य केवल उसके हाड मास की उपयोगिता होता है।

कलुआ को गालिया खाकर रोटी खिलाने वाली मिल गई थी और पिट पिटकर अपना शरीर देने वाली भी।

पहली रात कलुआ के पानी मागने पर जब लाखो का लोटा ढूढे न मिला तो उसके मुह पर कलुआ के हाथ का सुहागरात का वह थप्पड पडा जिसने आने वाली हर रात का भाग्य लाखो के अपने आसुओ से लिख दिया। बचपन म विमाता के हाथो पिटती-कुटती लाखो इतना कभी न रोई थी जितना उस रात रोती रही। विमाता से पीछा छूटने की थोडी-बहुत सात्वना लाखो के जिस अबोध मन को मिली थी उसे कलुआ के एक ही थपड ने अतल गर्त मे ढकेल दिया। 'ससुरी एक ही थप्पड मा रोवै लागी, कहता

कलुआ निश्चिन्त होकर टाग पसारकर सो गया और लाखी रोती रही रोती रही ।

लाखी का पिटता कुटता जीवन कटता रहा। किन्तु उसके इसी पिट-कुटे जीवन को रमेसुर के पत्र न जस एक नया जन्म दे दिया।

पत्र को अगिया मे छिपाए उस साझ जब लाखी घर लौटी ता छुटका को बडी देर तक कलेजे सटाए रही । वडका के पैसा मागने पर उसे पसा भी दिया, गुड की डली भी और सोचती रही कि वह क्या बनाए जो कलुआ दो रोटी अधिक खाए

रमसुर के आए की बात तो आई-गई हा गई थी किन्तु उसके पत्र की बात लाखी के लिए आई गई न हो सकी। लाखी न उस पत्र को हॉस्टल की लडकियो से इतनी बार पढवाया कि व लडकिया इसे उसका पागलपन समझन लगी और लाखी को उसका एक-एक शब्द याद हो गया।

रमेसुर का पत्र लाखी के दिन रात का अभिन्न हो गया। वडका-छुटका उसे 'माई' कहते ता उसे याद आता, 'आपको देखकर मा की याद बहुत आय गई ' फूटे दपण मे मुख देखती तो काना मे बज उठता, 'आप हसती हा तो गोड छू लेव का जी हाय उठता है ' और कलुआ से गाली और मार खाने पर बार-बार ध्यान मे गूजता, 'हम आपको कभी नाही भूल सकत है कभी नाहीं भूल सकत है कभी नाही भूल सकत है ।'

अनारकली

तालियों की गड़गड़ाहट में हाल देर तक गूंजता रहा।

कलकत्ते के नेशनल कॉलेज द्वारा प्रस्तुत 'अनारकली' नाटक अप्रत्याशित रूप से सफल रहा। नायिका थी शिप्रा सेन और नायक सुव्रत मजूमदार। बी० ए० फाइनल के ये दोनों छात्र और छात्रा वैसे भी चर्चा के विषय थे। तन्वंगी सुकुमारी शिप्रा सेन प्रख्यात बरिस्टर श्री क्षितिमोहन सेन की एकमात्र लाड़ली थी। जिस शानदार कार में कॉलिज जाती, उसमें वर्दीधारी शोफर के साथ वर्दीधारी अर्दली भी होता। कॉलिज के अहाते में कार रुकती, अर्दली तत्परता से कार का दरवाज़ा खोलता और नागिन सी वेणी झुलाती उतरती शिप्रा सेन कोमल परिधान में अपने कोमल गात को सजाए रूप की वैभवमयी प्रतिमा-सी! छात्रों के दल प्रतिदिन उस क्षण की प्रतीक्षा करते। चांदनी से उजले रंग और काजल सी कजरारी आंखों वाली शिप्रा सेन बंगला उपन्यासों में वर्णित नायिका सी भुवन मोहिनी थी।

सदा फर्स्ट पोजीशन पाने वाला सुव्रत मजूमदार गज़ब का मेधावी था। बुद्धि से प्रदीप्त नेत्र और 'सेल्फ कान्फिडेंस' की मुस्कान। सादे पैंट और शर्ट में भी उसका स्वस्थ शरीर आकर्षक लगता। अध्यापक उससे स्नेह करते और छात्र उसका आदर। निर्धनता का अभिशाप झेलता सुव्रत अपनी बुद्धि से चुनौती लिए बढ़ रहा था।

अनारकली अभिनीत करने के लिए जब शिप्रा और सुव्रत को चुना गया तो कॉलिज में सनसनी सी फैल गई। और जब वास्तव में अनारकली स्टेज पर प्रस्तुत हुआ तो वह सनसनी मुग्ध हो गई। नाटक के अंतिम दृश्य में ईंटों के बीच चुनी जाती सलीम से बिछु

डती अलविदा कहती अनारकली की आखा से सचमुच आसू वरम रह थे। 'क्या स्वाभाविक अभिनय किया है मिस सेन न भई वाह' कहते छात्रा के दल शिप्रा की अभिनय-क्षमता पर न्यौछावर हुए जा रहे थे।

सुव्रत भी हल्का नहीं पडा था। शाहजादा सलीम के रूप मे वह जब जब अनारकली के निकट गया उसे प्रतिदिन देखने वाले भी भूल गए कि वह सुव्रत है। सुव्रत की प्रतिभा का लोहा मानने वाले अध्यापक व छात्र उसकी अभिनय क्षमता का भी लोहा मान गए।

ऑल इडिया ड्रामाटिक्स काम्पटीशन म भी नेशनल कॉलेज कलकत्ता का अनारकली विजयी रहा। अनारकली और सलीम के 'मेकअप' म शिप्रा सेन और सुव्रत मजूमदार के चित्र देश भर के समाचार पत्रा म अकित हो गए।

तभी शिप्रा सेन को लगा कि सुव्रत उसके निकट सचमुच शाहजादा सलीम बन चुका है। शिप्रा की धडकनें उसके वश म न रही। उधर सुव्रत भी सोते जागत अनारकली के सपने देखने लगा। उसका भी मन अब उसकी बुद्धि के वश मे न था।

पूर्णिमा की रस भीगी रात म, लेक के किनार तक टहलत शिप्रा और सुव्रत जनम-जनम के लिए एक दूसर के बने रहने का व्रत ले बठे। उस रात जीवन के स्टेज पर अनारकली के प्रणय दश्य एक बार फिर अभिनीत हुए।

शिप्रा ने बेहद डरते-डरत बैरिस्टर पिता से अपने मन की बात कही। वह सुव्रत मे विवाह करने की इजाजत चाहती थी। बैरिस्टर साहब काफी पी रह थे। शिप्रा की प्राथना के उत्तर मे उन्होंने काफी के प्याले को फश पर पटक दिया। शिप्रा को उत्तर मिल गया। काफी के टटे प्याले के साथ उसके प्राणा म पलटा सपना भी टूट गया।

किन्तु शिप्रा भी आखिर अपने बाप की बेटी थी। जिद उसे पिता स ही विरासत मे मिली थी। 'या तो य प्राण सुव्रत का समर्पित होग अन्यथा रहन ही नही, नीद की गोलिया खाकर शिप्रा ने आत्महत्या

का प्रयास किया। लेकिन बरिस्टर साहब सतर्क थे। शिप्रा के प्रयास को चिकित्सा द्वारा विफल कर व उसे लेकर सदा के लिए इंग्लैंड चले गए। वे पेशे से ही नहीं स्वभाव से भी तर्क को मानते थे। उन्हें तर्क का विश्वास था कि बेटी की उम्र की नादानी को समय और स्थान की दूरी जीत लेगी। उन्हें अपने वैभव पर विश्वास था—कच्ची भावुकता सुख के पक्के साधना को भला कब तक ठुकराएगी।

शिप्रा की आत्महत्या के प्रयास के प्रत्युत्तर में सुव्रत भी नींद की गोलियाँ ले बैठा किन्तु वह भी चिरनिद्रा को न पा सका। और जब उसे होश आया तो शिप्रा कलकत्ते से जा चुकी थी। पर कटे पंछी से सुव्रत के प्राण छटपटा कर रह गए।

बीस वर्ष बाद—चुनावों के बीच।

कम्यूनिस्ट पार्टी के नेता श्री मजूमदार के सहकारी ने फोन उठाया। उधर से कांग्रेस टिकट पर खड़ी श्रीमती मुखर्जी का सेक्रेटरी बोल रहा था।

'श्रीमती मुखर्जी श्री मजूमदार से मिलना चाहती हैं।'

'श्री मजूमदार क्षमा चाहते हैं।'

'लेकिन श्रीमती मुखर्जी की उनसे भेंट बहुत जरूरी है।

'श्री मजूमदार असमर्थ हैं।'

फोन के पास ही बैठी श्रीमती मुखर्जी ने तड़पकर फोन ले लिया, 'प्लीज टेल मिस्टर मजूमदार दैट आइ मस्ट सी हीम।'

तब तक श्री मजमदार भी स्वयं फोन उठा चुके थे—ऑल राइट। एट फाइव पी० एम० टुडे।'

तीन दिन बाद चुनाव थे।

ठीक पांच बजे शाम को श्री मजमदार की साधारण-सी काटेज के सामने एक शानदार कार आकर रुकी। अर्दली ने अदब से कार का दरवाज़ा खोला और श्रीमती मुखर्जी बाहर आईं। कीमती खादी सिल्क की साड़ी, बाब्ड हेअर स्थूल गात को 'पेंसिल हील' पर संभाले श्रीमती मुखर्जी 'फॉरेनर' अधिक लग रही थीं। लम्बे विदेश

प्रवास ने उनके बगला उच्चारण को भी अग्रेजी 'टच' दे दिया था।

श्री मजूमदार के सहकारी ने बढकर अभिवादन किया और श्रीमती मुखर्जी को भीतर ले गया। कमरे मे प्रवेश करते ही श्रीमती मुखर्जी की नजर सामने की दीवार पर टगे चित्र से टकराई। बुद्धि मे प्रदीप्त नेत्र और सेल्फ कान्फिडेन्स की मुस्कान

दूसरी ओर से श्री मजूमदार ने प्रवेश किया। 'हलो' श्रीमती मुखर्जी ने कहा 'कैसे है ?' अन्दर से वे चाहे कापी हो पर ऊपर से तटस्थ थी।

'ठीक हू, कहिए।'

मजूमदार की 'कहिए' ने श्रीमती मुखर्जी की कोमल पडती नसो का झटका देकर तान दिया। श्रीमती मुखर्जी देख रही थी कि जिन प्रदीप्ति नेत्रा से ज्योति लेकर उन्होने कभी अपने मन का दीया जलाया था वह ज्योति अब जला देने वाली ज्वाला बन चुकी थी। 'सेल्फ कान्फिडेन्स' की मुस्कान विप-बुझी छुरी बनकर रह गई थी।

सुव्रत के चित्र के ठीक नीचे खडे श्री सुव्रत मजूमदार को तो श्रीमती मुखर्जी ने कभी देखा भी नही था।

'क्या आप कृपा करके अपनी बात शीघ्र समाप्त करेंगे ? मुझे और भी जरूरी एगेजमटस हैं। श्री मजूमदार ने दूसरी सिगरेट सुलगा ली थी। श्रीमती मुखर्जी की उगलियो पर उनकी दृष्टि पडी नीलम की अगूठी पहने थी। 'मुखर्जी साहब ने पहनाई होगी' सोचते मजूमदार मन मे आक्रोश से सुलग उठे, ये साले 'कैपिटलिस्टस' देश के सेवक बनते हैं और यह नगो और भूखो का देश है। जरा इन देवीजी की हुलिया तो देखिए, पुडिग और आमलेट खाकर देश की सेवा कर रही हैं।

श्रीमती मुखर्जी भी ऐसे मौके के लिए सध चुकी थी—'जी हा, ठीक है मैं आपका अधिक समय नही लूगी। मैं तो केवल यह 'रिक्वेस्ट' करने आई थी कि आप अपना नाम 'विदड्रा' कर लें।'

'मैं और विदड्रा कर लू, भला क्या ? देश की चिन्ता मुझे भी है और मैं भी अपने जीवन का उपयाग करना चाहता हू।'

श्रीमती मुखर्जी सोच रही थी कि ये कम्यूनिस्ट है या भूखे भेडिये

मजूमदार की जलती आंखों से उन्ह सख्त आपत्ति थी।

लेकिन सुव्रत '

'मजूमदार कहिए, मैडम !'

इतनी अभद्रता—श्रीमती शिप्रा मुखर्जी ने अपने होंठ काट लिए, देखिए मिस्टर मजूमदार यह मेरा सामना नहीं कर सकता, अब यदि आप इस सीट के लिए 'विदड्रा' कर लें तो '

आंखें अब भी कजरारी हैं पर उनमें मद के स्थान पर केवल विपक्षी से लोहा लेने की सतर्कता है, श्री मजूमदार ने उडती दृष्टि से देखा—प्रेस्टिज का प्रश्न तो मेरे आदर्श, मेरे व्रत का भी प्रश्न है।

'व्रत बरसों पहले की लेक के किनारे की पूर्णिमा की एक भीगी रात शिप्रा मुखर्जी की स्मृति में चिहुक कर रह गई ।

'ये ऐसे नहीं मानेगा इसे तो गुंडों से पिटवाना चाहिए अप्रकट ये तिलमिलाती श्रीमती मुखर्जी आपा खो बैठीं— तब ठीक है मिस्टर मजूमदार मैं भी हार नहीं मानूंगी। थैंक यू, मैं चलती हूं।'

तीसरी सिगरेट सुलगाते मजूमदार ने ह्विस्की की पूरी बोतल बिना सोडा मिलाए गले में उलट ली। उनकी अचेत होती चेतना में जाने कहां से एक बदरिया उछल रही थी और फिर रात भर उसके सपनों में अनारकली और बदरिया एक दूसरे में गड्डमड्ड होती रहीं।

दुल्हन

देव कहते हैं—मैं सुन्दर हूं, बहुत सुन्दर! दर्पण उनके कथन की दाद देता है। सच कहूं तो दर्पण में अपनी मोहक छवि को निहारकर मुझे स्वयं पर प्यार आ जाता है।

सौन्दर्य के मुकुट-सी कुन्तल राशि, पलकों की रेशमी चिलमन में आंख मिचौनी खेलते आयत लोचन, जिनके गुलाबों का भ्रम जगा देने वाले गुलाबी कपोल, चांदनी में घुल जाने वाली स्निग्ध शुभ्र कान्ति, अजन्ता के किसी मोहक चित्र को सजीव करती-सी अंग-यष्टि—देव कहते हैं मैं वास्तव में निरुपमा हूं, मेरा नाम सार्थक है!

मेरे स्वामी श्री देवकुमार राय प्रसिद्ध चौधरी वंश के कुलदीपक हैं। पीढ़ियों से चली आती जमींदारी और पीढ़ियों से चला आता रौब-दाब। जमींदारी प्रथा के उन्मूलन होने पर भी हमारे घराने का रोब-दाब कम न हुआ। हम पर आज भी लक्ष्मी की कृपा है।

देव का व्यक्तित्व भी कम प्रभावशाली नहीं। प्रशस्त ललाट, दीप्त नेत्र, सुगढ़ चिबुक—वे किसी राजपूत सेनानायक से तजस्वी हैं। मेरा रूप और उनका तेज—देव सहास कहते हैं कि पिछले किसी जन्म में वे पृथ्वीराज रहे होंगे और मैं संयोगिता।

विवाह के बीस वर्ष के बाद आज भी देव मेरे रूप की अभ्यर्थना करते हैं—'जानेमन' बन्दा तो तुम्हारे इस रूप का गुलाम हो गया वरना चौधरीवंश के मर्द बीबी के आंचल में बंधकर रहने वाले नहीं।' बिल्कुल ठीक कहते हैं वे, हमारे वंश के मर्द सुरा और सुन्दरी का उपभोग मूछों पर ताव देकर करते रहे हैं।

किन्तु देव मेरे इस दीपशिखा से रूप के ही शलभ रह जाए। मेरे अनिंद्य रूप पर उनका पौरुष मुग्ध रह आया, उनके सुदृढ़

आलिंगन मे सिमटकर मेरा नारीत्व सार्थक होता रहा।

विवाह की बीसवी वषगाठ पर मुझे अपने आलिंगन म समेटत देव की आखो मे प्रणय झूम उठा था—'तुम्हारे रूप के च द्र का आयु का ग्रहण कभी न लग पाएगा, निरू। तुम अप्रतिम रूपसी ही नहा, *अक्षय यौवना भी हो।' सच ही तो है, कौन कहेगा कि मैं एक* पोडशी कन्या की मा हू।

पुत्री नदिता सालह की हो चली और पुत्र आशीष बारह का—तो हम उनकी शिक्षा दीक्षा के लिए अपना छोटा मा गाव छोडकर महानगर कलकत्ता चले आए। कलकत्ते मे हमारी कोठी थी ही। नौकर चाकर रसोइया शोफर सब हमारे साथ गाव से आ गए। कलकत्ता पहुचने पर केवल एक ही कमी थी—धोबी की, भला धोबी गाव से कसे साथ आता।

मैं दपण के सम्मुख अपने को सवार रही थी। सदा मे साथ रहे आए वद्ध नौकर हरीराम ने आकर सूचना दी—'रानी मा एक धोबी आया है, जरा बात कर लीजिए।' मैं बाहर आई दखा चिकन की दुपलिया टोपी लगाए, तहमद पर लम्बा कुरता पहने चड़ी-चड़ी मूछोवाला एक दुबला पतला, काला निहायत मामूली सा आदमी है। शक्ल म धोबी नही माजिन्दा सा लगता है—मैंने सोचा। उसने मुझे देखकर भुककर लम्बा सलाम किया। 'तुम्हारा *नाम'—मैंने पूछा। हुजूर गुलाम का इब्राहीम कहते हैं*—उसने फिर सलाम किया। मुझे वह जच गया था।

इब्राहीम हमारे कपड़े धोने लगा। उसका काम मुझे ही नहा देव को भी पसन्द था। वक्त के पाबन्द और काम के चौकस इब्राहीम से हम बाद शिकायत नहा थी।

एक दिन धुल आए कपडा का हिसाब दते वह रुका, जयपुरी चुनरी की साडी को उठाकर बोला—'सरकार एसी एक साडी मुझे ला दीजिए। क्या करोग —मुझे आश्चय हुआ। 'सरकार दुल्हन के लिए लूगा। वो जरा काली है, उसके काले रग पर एसी लाल रग की साडी बहुत अच्छी मालूम होगी। ला ेगी न सरकार ? पैस

हिसाब में काट लीजिएगा। इब्राहीम ने मंगोत में अटक-अटक कर बात पूरी की। अच्छा तो दूंगी पर साड़ी कीमती है इतनी कीमती का क्या करोगे,—मैंने समझाना चाहा। 'हुजूर दुल्हन के लिए चाहिए न, आप कीमती की परवाह मत कीजिए'—इब्राहीम के स्वर में ललक थी।

तो क्या इसकी दुल्हन नवेली वधू है शायद बड़ी उम्र में अब शादी की है तभी यह हाल है—मन सोचा। पूछे बिना न रहा गया—'क्या अभी-अभी शादी की है?' इब्राहीम ऐसा सकुचा गया जैसे नया दूल्हा हो—नहीं सरकार शादी को तो जमाना गुजर गया। खुदा ने औलाद दी होती तो आज बराबर की होती। इब्राहीम के जाने के बाद मैं देर तक दुल्हन के बारे में सोचती रही थी। मन वही साड़ी उस को दी और पैसे हिसाब में काट लिए।

इब्राहीम साइकिल पर कपड़े लाता ले जाता था। उस दिन वह पीठ पर ही गठ्ठर लादे आ गया तो मुझे आश्चर्य हुआ—क्या भई, तुम्हारी साइकिल को क्या हो गया? क्या बताऊं हुजूर? दुल्हन ऐसी बीमार पड़ी कि कुछ न पूछिए। सन साहब को दिखाया तब बची और इस गुलाम के पास साइकिल को छोड़कर और था ही क्या जिससे फीस चुकाता। लेकिन कोई बात नहीं, बन्दे को खेद का कोई गम नहीं। दुल्हन सलामत रहे मुझे और कुछ नहीं चाहिए।' इब्राहीम के स्वर में वही आवेश था जो दर्द के स्वर में होता था। डॉक्टर सेन कलकत्ते के प्रसिद्ध डाक्टर थे और उनकी फीस चौंसठ रुपये थी।

अब मैं दुल्हन को देखने को उत्सुक हो उठी थी। अवश्य ही इब्राहीम की दुल्हन रूप में दुल्हन होगी, झोपड़ी में उतर आया चांद का टुकड़ा होगी, पूरे पर खिला गुलाब होगी तभी न तभी न

अगली बार जब इब्राहीम आया तो मैंने दुल्हन को देखने की इच्छा व्यक्त की। 'जरूर, जरूर सरकार, जरूर लाऊंगा उसे हुजूर की कदमबोसी के लिए। मैं तो खुद लाना चाहता था लेकिन,

हिम्मत नही पडता थी आपसे इजाजत मागने की इब्राहीम ने ऐसा हुलसकर कहा कि लजाती, सकुचाती एक परी सी दुल्हन ही मेरे सम्मुख साकार हो गई।

उसी बीच मैंने नेपाल की उस रानी की कथा पढ़ी जो अपने अनिंद्य रूप के कारण अपने स्वामी को अत्यन्त प्रिय थी। किन्तु चेचक के प्रकोप के कारण रूप गवाकर पति का प्यार भी गवा देने की आशका से जिसने आत्महत्या कर ली थी। रूप और प्रेम का चोली दामन का सा साथ होता है—विश्व की अनेक प्रसिद्ध प्रेम कथाए इसका प्रमाण हैं बार-बार सोचती म अपने रूप के प्रति और भी सावधान हो उठी थी।

देव स मन इब्राहीम की दुल्हन की चर्चा की तो वे प्रसन्न हो उठे—हमारे धावी को भी अल्लामिया न वसी ही परी बख्श दी होगी जसी हम दी है। पुरुप तो रूप का पुजारी होता ही है चाहे वह इब्राहीम धोबी हो या श्री देवकुमार राय।' इब्राहीम रविवार को दुल्हन को लाने के लिए कह गया था। मुझे बहुत प्रतीक्षा थी चाहती थी कि देव भी दुल्हन को देख लें।

नियत समय पर इब्राहीम आया। उसके पीछे पीछे काले बुरके म दुल्हन थी। इब्राहीम ने झुककर सलाम किया। मेरा हृदय बुरी तरह धडक रहा था। 'दुल्हन बुरका उठा दो और सरकार का सलाम करो। आप ही हमारी मालिक है।' इब्राहीम के स्वर म प्रसन्नता का आवेश था। दुल्हन ने बुरका उतारकर अलग रख दिया, झुककर सलाम किया और फूहडता से हस दी। वह वही जयपुरी चुनरी पहने थी। उत्सुक आखो के सम्मुख था एक बेडौल, ढला नारी शरीर, काला स्याह रग, सौंदर्य के प्रश्न चिह्न सी भद्दी नाक पर कटाक्ष करती सी तिरछी आखें, लावण्य की हसी उडाते निचले होठो पर रखे बडे-बडे दात देव ने भी दुल्हन को चिक म से देख लिया होगा वे भीतर कमरे मे ही तो थे।

दुल्हन के सलाम के प्रत्युत्तर मे मैं अवाक थी। भीतर से देव की आवाज़ आई। 'मुझे देर हो रही है ज़रा 'ड्रेस अप' करने म मदद

कर दो।'

मै भीतर गई तो सिर चकरा रहा था। देव ने मुझे थाम लिया—'क्या गश आ रहा है जानेमन? अरे, ऐसे ही तो हम भी तुम्हें देखकर गश आ गया था। लो तुम्हें एक फड़कता हुआ नायाब शेर सुनाएं जो तुम्हारे इब्राहीम मियां और उनकी दुल्हन पर बिलकुल फिट बैठता है

हथिनी की कमर पर खते लाठी से लिखा था
मरता हूं मेरी जान तेरी पतली कमर पर

अब जल्दी से कुछ दे दिलाकर इन्हें यहां से विदा करो, वरना मुझे भी गश आ जाएगा।' देव व्यंग्य से हंसते बाहर चले गए।

मेरी तबियत सचमुच खराब हो गई थी। दिल अब भी धड़क रहा था। दुल्हन के हाथों मे पांच का नोट देते मैंने इब्राहीम की ओर देखा—उसके मुंह पर दुल्हन की प्रशंसा सुनने का आतुर भाव छलका पड़ रहा था, लेकिन मैं तो गूंगी हो गई थी।

उस दिन को भी तो तीन वर्ष बीत गए। इब्राहीम अब भी हमारे कपड़े धोता है, दुल्हन के लिए मुझसे कीमती साड़ियां मंगवाता है और अब दुल्हन के लिए जड़ाऊ बालियां लेना चाहता है।

देव अब भी कहते हैं कि मैं सुंदर हूं—बहुत सुंदर। दर्पण अब भी उनके कथन की दाद देता है। लेकिन अब जब भी मैं दर्पण के सम्मुख खड़ी होती हूं तो मेरे पार्श्व में दुल्हन भी जरूर आ खड़ी होती है।

सती

यदि कवि दृष्टि से नामकरण किया जाता तो भी यह विवाद का विषय होता कि उसका नाम चम्पकलता रखा जाय या मृगनयना। खिले चम्पा के फूल सा रंग और चकित मृगी सी आँखें। घने, अत्यन्त काले केशों की परिधि में उसके मुख की सुनहरी आभा और भी सुनहरी लगती और उस सुनहरी आभा की पृष्ठभूमि में गहरी काली आखें और भी अधिक काली। किन्तु उसका नाम कनका था, केवल कनका, कनकलता भी नहीं। शहर के बाहर बसी थापड़ियों की बस्ती की कनका, घूरे पर खिला गुलाब थी।

वृद्धा नानी की एकमात्र नातिन थी कनका। नानी और नातिन दोनों का ही इस संसार में एक दूसरे को छोड़ और कोई तीसरा न था। नानी ने नातिन को कलेजे से लगाकर पाला था। नातिन के इतने ढेर सारे रूप का शृंगार करने के लिए नानी के पास और तो कुछ भी न था, किन्तु कुदृष्टि से बचाने के लिए नानी कनका के माथे पर काला टीका लगाना कभी न भूलती। अब बेचारी नानी को क्या पता था कि दमकते माथे पर कुदृष्टि से बचाने के लिए लगा टीका ही देखने वालों की दृष्टि बांध-बांध लेता था।

पांच बरस की कनका कब पन्द्रह की हो गई यह न कनका जान पाई न नानी। नानी यही सोचती कि कनका का लहंगा ऊंचा नहीं हुआ है, मरे दर्जी ने ही कपड़ा चुरा लिया होगा। और बस्ती में सदा निर्द्वन्द्व घूमती कनका को इमली अब भी उतनी ही खट-मिट्ठी लगती थी। आभूषण के नाम पर नाक में पहनाई गई लाल पत्थर की चार आने की कील, कनका की सोनजुही-सी नासिका पर मणि सी जगमग करती। वयसंधि की अलबेली

अवस्था मे वह जगमगाहट इतनी बढ गई कि बस्ती वाले पाच और पन्द्रह के अन्तर के प्रति नानी को सचेत करने लगे। किन्तु ऐसी राजकुमारी सी नातिन का हाथ नानी किसी भी ऐरे गैरे के हाथ म कैसे दे दे ? क्या मेरी राजकुमारी को कोई राजकुमार नहा मिल सकता नानी की धुधली आखा म एक सपना जाग उठा। नानी यथा शक्ति प्रयास करने लगी, कि तु असहाय, निधन वद्धा केवल प्रयासा के बल पर क्या पा सकती थी ?

एक दिन बस्ती के तालाब के किनारे बठी कनका अपनी एडियो को पत्थर के टुकडे से रगडकर चमका रही थी। भीगी साडी मे गात की एक एक रेखा स्पष्ट थी। भीगी लाल साडी मे से छनती शरीर की चम्पई आभा उस माटी झोटी साडी को रेशमी बनाए दे रही थी तभी एक विदेशी पयटक कीमती कैमरा लटकाए उस ओर आ निकला। कनका को उस 'पोज' म देखकर वह उसे अपने कैमर की आख मे भर लेने के लिए आतुर हो उठा। उन्नत वक्ष और पुष्ट नितम्बो के मध्य क्षीण कटि और भी क्षीण लग रही थी और सब कुछ बिलकुल नैचुरल 'ए मिलियन डालर फिगर।' पयटक की दष्टि लोलुप हो उठी। यदि यह सु दरी एक 'पोज' दे दे तो अमरीका की 'माडल गर्ल्स पानी भरने लगें। पयटक न दस का नोट निकाला और सीटी बजाता, नोट हिलाता कनका की ओर बढा। कनका अब भी अपन म मगन थी कि उसकी समवयस्का सखी गगा 'उई मा' कहती उससे आ लगी। पयटक सीटी बजा रहा था, नोट हिला रहा था, भाषा की दुविधा को आखें नचाकर मिटाना चाह रहा था। उसने कनका को बाह पकड-कर उठाया और नोट उसकी भीगी हथलिया म ठूसकर हस पडा। अभी हसी थमी भी न थी कि उसी भीगी हथेली का एक भरपूर थप्पड उसके गाल पर पडा, दस का नोट कई टुकडो मे टूटकर उसके मुख पर उडती हवाईया के साथ उडने लगा। थप्पड की आवाज़ अभी भी हवा म गूज रही थी। खोपटी की आर लौटती गगा ने सहमकर कहा 'अरी कनका, तूने तो दस का नोट ऐसे फाड दिया

जसे रद्दी कागज हो। अगर सौ का होता तो ।' 'सौ का होता तो थप्पड और जोर का लगाती, तुम्हें लगाकर बताऊ ?' और इमली चसती कनका ऐसी निश्चितता से हसी जैसे कुछ हुआ ही न हो। कनका का यह रूप गगा के लिए भी अप्रत्याशित था। कनका अपनी निश्चितता म मगन रही आई गगा सहमकर चुप हो गइ। बस्तीवाला का उस घटना का पता भी न लगा।

तभी शहर का बदनाम गुडा नागन, तीसरी बार जेल से छूटा ता सीधा कनका की बस्ती म रहने चला आया। काला डरावना आकार, लाल आखें और बिच्छू के डक सी नोकदार मूछें। बस्ता के बच्चे उसे देखकर सहमकर रोने लगत और कुत्ते घबराकर भौंकते। नागन की हिंस्र दष्टि कनका के अछूते यौवन पर पडी, वह एक गुनाह और करने के लिए आतुर हो उठा।

गर्मी की दोपहर साय साय कर रही थी। पेडो के पत्त तक स्तब्ध थे। बस्ती के सारे पुरुष और अधिकाश स्त्रिया मजूरी के लिए जा चुके थे। नानी भी प्रतिदिन की भाति मजूरी करने गइ थी और कनका अपनी झापडी मे ऊबी सी ऊघ कर दोपहरा काटने का प्रयास कर रही थी। तभी कनका के साथ छाया सा घूमने वाला कुत्ता चापडी के द्वार पर पूरी शक्ति से भौकने लगा सामने पीपल के पड पर गौरया का जोडा पख फडफडाकर चीत्कार कर उठा, कबूतरी-सी कनका को नागन ने बाज सा दबोच लिया। नागन की वज्र पकड से छूटने के लिए छटपटाती सघर्ष करती कनका ने मूर्च्छित होकर ही समर्पण किया ।

प्रतिदिन की भाती साझ ढलने पर नानी लौटी तो कू कू करता कुत्ता उसकी टागा म लिपट गया। झापडी म अब भी इतना प्रकाश था कि मूर्च्छित कनका का रक्त से सन कपडों मे देखकर नानी के लिए कुछ भी समझना शेष न रहा। असहाय वृद्धा न अपनी छाती पीट डाली, बाल नोच डाले।

बात फली और दबा दी गइ। भला कौन उस खूखार दुष्ट नागन से वर माल लता ? लोगो न नानी को समझाया कि अब ता

वह जल्दी स जल्दी कनका की रक्षा का उत्तरदायित्व जो भी मिले, उस सौंप दे।

उस मूर्च्छा स होश मे आने के बाद कनका केवल मौन हो गई। न वह रोई न उसने किसीसे कुछ कहा केवल उसकी आखो म वह निद्र्वता न रही, नानी और नातिन के बीच भी वह अभिशप्त मौन मडराने लगा।

नानी व्याह की बात पक्की करने का प्रयास कर रही थी कि एक प्रात कनका उसके निकट आ खडी हुई और बोली 'नानी मैं दूसरी जगह व्याह नहीं करूगी।'

नानी की समझ म कुछ न आया, 'दूसरी जगह क्या री, अभी तेरा व्याह हुआ ही कहा है ?'

मैने कहा न मैं दूसरी जगह व्याह नही करूगी, मैं नागन के साथ रहूगी,' कनका न स्पष्ट शब्दो मे बात स्पष्ट की।

नानी मानो आसमान से गिरी। उनकी समझ म फिर भी कुछ नहीं आया, चीखकर बोली, 'अरी मुहजली, नागन के साथ क्या भाड झोकेगी ? उस गुडे बदमाश के साथ रहगी जिसने तेरी इज्जत खराब की!

'इज्जत तो मेरी तब खराब होगी जब मैं नागन का छोड दूसर का हाथ पकडूगी। अब तो वही मेरा मरद है।

'इज्जत' की यह नवीन परिभाषा सुनकर नानी स्तब्ध रह गई। नानी नातिन की जिद म अपरिचित न थी, वह समझ गई कि अब कनका को ब्रह्मा भी उसके हठ से नही हटा सकते।

बस्ती वालो ने आश्चय और आतक से कनका का नागन की झोपडी म एकदम अकेली जाते देखा। कैसा था वह व्याह कि बस्ती वाले आमोद के स्थान पर आतक से सिहरते रह। कसी थी वह वधू जो इज्जत की अपनी, केवल अपनी परिभाषा के बल पर शहर क नामी गुडे के द्वार पर परिणीता सी जा खडी हुई।

नागन और कनका मे क्या समझौता हुआ, यह तो कोई न जान सका किन्तु कनका नानी की झोपडी छोड नागन की झोपडी म

रहने लगी है यह लोगों को स्वीकार करना ही पड़ा।

और फिर समय अपनी गति से चलता रहा। नागन मुंह अंधेरे गायब हो जाता और रात गए नशे में धुत लौटता। बस्ती वाले उसके बारे में केवल इतना ही जान पाते रहे। कनका ने शहर के रईस लाला रामदयाल के यहां चौका बरतन की चाकरी कर ली। वह भी मुंह अंधेरे जाती किन्तु सांझ ढले लौट आती, और जब लौटती तो आंचल में टमाटर जरूर बंधे होते, नागन को टमाटर बहुत पसन्द थे।

टमाटर रुपये सेर भी बिकते तो भी कनका टमाटर जरूर लाती। उस दिन गंगा की शामत आई, जो कह बैठी 'अरी कनका ऐसे तो कोई अपने खसम को भी नहीं दुलारता जैसे तू इस गुंडे की खातिर करती है। भला रुपये सेर टमाटर और वह भी तेरी पसीने की कमाई के। उस निलज्ज ने कभी तुझे पीतल का छल्ला भी दिया है।'

गंगा बात पूरी कर पाती इसके पहले कनका की आंचल के टमाटर उसके मुंह पर थे, 'चुप रह री डायन, खसम और किसे कहते हैं क्या मैंने उसे छोड़ किसी और को ताका भी है।' कनका चंडी बन गई थी।

और उस दिन तो गजब ही हो गया। उस गन्दी बस्ती को अप्रतिभ करती एक साफ-सुथरी मोटर कार कनका की झोंपड़ी के ठीक सामने आकर रुकी। गाडी में से एक बाई जी उतरी, होठों पर गहरा लाल रंग, आंखों में गहरा काजल, बदन पर गहरी बैगनी साड़ी, सर से पैर तक गहनों की नुमाइश और चाल में गहरी ठसक। बाई जी सीधे कनका की झोपड़ी में घुसी और दस मिनट में ही चाल में ठसक के स्थान पर जान बचाकर भागने की मुद्रा लिए, भागती सी बाहर निकली। पीछे कनका थी, हाथ में झाड़ू लिए केश बिखरकर नागिन से लहरा रहे थे आंखों से चिनगारियां छूट रही थीं। भागती बाईजी पर उनकी छोड़ी हुई जूतियां एक

एक कर फेंकती कनका फटे गले से चीख रही थी, 'अपनी जूतिया तो खाती जा, कमीनो। मुझे सुख का पाठ पढाने आई थी। ऐसे गहने कपड़ो को आग लगे, तेरे मुह मे मट्टी पड़े निगोडी। नागन गुडा है, सुनते-सुनते मेरे तो कान पक गए। अरे वो गुडा है तो हुआ करे, मैं तो हरजाई नही।'

कनका को उसकी पडोसिना ने कसकर थाम लिया था अन्यथा बाईजी कनका के हाथो कुछ स्मृति चिह्न अवश्य लेकर जाती।

उधर गाडी म बैठी बाईजी कानो पर हाथ रखे बडबडा रही थी, 'बाप रे बाप, औरत है कि झासी की रानी! अरे वो तो मैं भाग खडी हुई वरना आज मेरी जान की खैर नही थी। मैं तो भले की कहने गई थी, ऐसा हुस्न और जवानी कया खुदा सबको देता है, और ये अभागी है कि उस गुडे के पीछे सती हो रही है। लेकिन कुछ भी कहा, औरत है बला की खूबसूरत! हमारे हुस्न के उस बाजार मे भी इसकी सी तो एक भी नही।' लेकिन तभी झाडू फटकारती कनका उनकी आखो मे कौधी और वे ड्राइवर को गाडी तेज चलाने को कहती सीट के कोने दुबक गई।

नागन को अपनी निममताओ की निमम सजा मिली। किसी सवा सेर ने उसकी हत्या कर दी। कनका तक जब बात पहुची तो वह केवल और भी चुप हो गई। उसने अपने ही हाथो पहना काले डोरे का मगलसूत्र ताड फेका, कलाइया मे काच की एक भी चूडी न रहने दी और टमाटर लाना एकदम बन्द कर दिया।

लाला रामदयाल जी के यहा पूजा पाठ के लिए आनेवाले पडित गौरीशकरजी वास्तव म ज्ञानी पुरुष थे। वे धम के मम को समझते थे। रूढि नही, आचार की आत्मा के प्रति आस्था रखने वाले गौरीशकरजी ने जब कनका की कथा सुनी तो अवाक् रह गए।

नागन की बरसी के दिन कनका श्राद्ध के लिए दाल, चावल, आटा आदि के साथ पाच सेर टमाटर लेकर पडितजी की सेवा मे उपस्थित हुई। इधर उधर देखकर आचल म से बोतल निकाली और उसे पडितजी के सम्मुख रखती हाथ जोडकर बोली, पडितजी,

ये टमाटर और य दारू अभागे को य दोनो चीजें बहुत पसन्द थी, सो आप इन्हे स्वीकार कर लो, मुए को वहा भी तलब उठती होगी।'

पडितजी ने कहना चाहा कि श्राद्ध म दारू नही दी जाती, किन्तु इज्जत को नई परिभाषा देने वाली कनका को वे समझा नही पाएगे, यह वे स्वय समझ चुके थे।

नागन की मृत्यु के पश्चात कनका पाच वष और जीवित रही। प्रतिवष नागन की बरसी पर टमाटर और दारू लेकर पडितजी के पास जाती रही और फिर एक दिन पडितजी ने सुना कि कनका भी नही रही।

कनका की मत्यु का समाचार सुनते ही पडितजी न स्नान किया। रामायण पाठ करने बठे। रुधे कठ स पढा

एकै धम एक व्रत नमा काय वचन मन पति पद प्रेमा

और रुधे कठ से इन्ही पक्तियो को बार-बार दुहराते पडितजी क सम्मुख तुलमी की सीता नही कनका बार बार सजीव होती रही।

युग-पुत्री

रचना ने कल पहली बार पी थी, इसीलिए हो सकता है वह कुछ बहक गई हो लेकिन बेहोश तो वह कतई नही थी, जैसा कि मा समझी थी—वह होश म थी, बिलकुल होश म

कसी उन्मादक सध्या थी कल की, चढते नशे सी, जिसके गुलाबी सुरूर में डूबकर रचना को लगा कि यही तो जिन्दगी है—यही ता वह जिन्दगी है जिसको उसका खूबसूरत शरीर चाहता है—हा शरीर ही तो शरीर से परे अपने किसी भी 'कुछ' को वह नकारती रही है। बचपन म 'ईट ड्रिक एण्ड बी मेरी' चिल्ला चिल्लाकर कहन वाली रचना अब निहायत शालीन स्वर म कहती है, लेट अस एनजॉय लाइफ एड फॉरगेट द रेस्ट ' अपनी इस फिलॉसफी मे जी लेने वाली रचना ने वह सब पा लिया था जिसे वह पाना चाहती थी। लेकिन चढते नशे से कल की रात के बाद उतरते नशे सा आज का दिन उसके सामने एम आ खडा होगा—यह रचना ने नही सोचा था।

कल की रात एक विशेष रात थी, रचना की, मिस रचना कपूर की एक और विजय की एक और रात। ड्रेसिंग टेबुल के समक्ष खडी रचना ने सावधानी से स्वय को सवारा था। मसकारा न कजरारी आखो के तिरछे कटाक्ष और तिरछे कर दिए थे, लिपस्टिक ने गुलाबी होठो के आमन्त्रण और भी गुलाबी। शाख गुलाबी रग की नाभिदर्शना साडी ने रचना के अग अग से फूटती शोखी के रग गहरे कर दिए थे। स्लीवलेस, लो-कट चाली ने उस शोखी को मादक बना दिया था। कानो मे जिप्सी रिंग झुलाकर, शैम्पू से धुली कधो तक बिखरी सुगधित अलको को पतली खूबसूरत उगलियो स बार-बार सवारती रचना स्वय को 'कॉम्प्लीमेटस दे बैठी

जितना एक पुरुष के एक नारी ही हो सकती है क्या यह एक पुरुष और एक नारी का सम्बन्ध था या एक बास और स्टेनो का स्टेनो—जो सेक्रेटरी होना चाहती है। बॉस कीमत लेना जानता है स्टेनो कीमत देना जानती है और व दानो ही इस स्थिति को 'एनजाय' करना भी जानते हैं—कितना साफ बेबाक समझौता है, सौदा नही सिफ समझौता। रचना हसी, किसी टुथपेस्ट के विनापन सी उसके मोती से दाता की इसी हसी ने उस मुहमागी जिन्दगी दिलाई है। अभी भी वह उस पुरुष के कध पर सिर टेके है और अपनी खूबसूरत उगलियो मे उसका स्टीयरिंग व्हील पर रखा रोय दार हाथ इतमीनान स सहला रही है, फिर भी उसे बार बार लग रहा है जैसे उसके साथ जवदस्ती की गई हो। रचना जानती है किसीन उसके साथ कोई जबदस्ती नही की न अमरकान्त ने न और किसीने। तो फिर क्या रचना न स्वय अपने साथ जवदस्ती की है रचना चौककर देखती है उसकी नायलॉन जार्जेट की एटी-क्रीज साडी ऐसी क्या लगती है जैसे कुचल दी गई हा ओह !

घर पहुचकर अमरकान्त को स्वीट ड्रीम्स कहती रचना ऐसी चुक गई थी कि उसका जी चाहा वह सीढियो पर ही बठी रह जाए रात के इस नीरव अधकार से घिरी। घर कहा है उसका, वह तो स्वय चौरस्ते पर लगा नियान लाइट से घिरा एक जगमगाता विज्ञापन है। यह जगमगाहट और यह चौरस्ता क्या सोचे जा रही है वह रचना न अपने सिर को एक झटका दिया, तभी मा ने दरवाजा खालकर पुकारा था, 'रचना'। लडखडाती सीढिया चढती रचना मा से भी 'स्वीट ड्रीम्स' कह बैठी थी और फिर दातो से जीभ काटती अपन कमरे म पहुचकर बिस्तरे पर ढेर हो गई थी।

कल शनिवार की साझ थी, आज रविवार का सवेरा है। रचना की आख खुलती है। ढेर सारी धूप कमरे म भर चुकी है। रचना रिस्टवाच देखती है, ओह ! नौ बज गए रिस्टवाच देखत-देखते रचना अपनी कोमल कलाई दखने लगती है और उसे अमरकान्त का रोयेदार हाथ याद आ जाता है मा की पदचाप सुनकर रचना सिर

तक चादर खींचकर ऐसी हो जाती है जैसे गहरी नींद मे हो। मा आती है उसके निकट चुपचाप खडी रहती है, फिर धीरे धीरे लौट जाती है। रचना को लगता है जसे मा एक प्रश्न लेकर आई थी और फिर अपने प्रश्न की निरथकता को उत्तर मानकर लौट गई है। रात रचना को बिस्तर पर लिटाते मा ने कहा था, 'तो तून आज शराब भी पी है, तू होश म नही है।' मा के उस स्वर म क्या था, क्रोध या घणा ? कुछ भी तो नही था उस स्वर मे था केवल एक ठडापन जिससे बिस्तर पर लेटती रचना जमकर रह गई थी।

मा को चुपचाप कमरे से लौटती देखकर रचना का जी चाहता है कि वह मा को बुला ले अपने निकट बैठाकर उससे बातें कर ऐसी बातें जिससे यह ठडा अधेरा दूर हो जाए लेकिन अधेरा है ही कहा इतनी सारी तो धूप भरी है कमरे म रचना चादर उतार फेंकती है। मा ने कल कहा था कि वह होश मे नही है वह तो पूरे होश मे थी। होश म तो यह मा नहीं रही है—जीवनभर।

रचना न जिस वष सीनियर कैम्ब्रिज पास किया था, पिता उसी वष रिटायर हो गए थे। विदेशी भाषा को विदेशी एक्सेन्ट' से बोलने वाली 'स्माट' लडकी को जाब' मिलने म कठिनाई नही होगी, पिता जानते थे। रूढियो मे बधी मा रचना के हाथो म विवाह की बेडिया डाल देना चाहती थी लेकिन रचना अपने उन कामल हाथो को स्वतन्त्र ही रखना चाहती थी। अग्रेजी उपन्यास पढनेवाली, अग्रजी फिल्म देखनेवाली, धाराप्रवाह अग्रेजी बालनवाली रचना न मा का हतप्रभ करके छोड दिया था। पिता एकाउन्टेन्ट रहे थे अत परिवार के लिए रचना के अस्तित्व के आर्थिक पक्ष का हिसाब उनके लिए महत्त्व रखता था। थके हार रोगी पिता का यही महत्त्व रचना की महत्वाकाक्षा बन गया। रचना को एक विदेशी कम्पनी मे स्टेनो का स्थान पा लेने म कोई दिक्कत नही हुई। कजरारे कटाक्ष फेंकती गुलाबी आमन्त्रण बिखेरती मिस रचना कपूर 'लेट अस एनजॉय लाइफ एड फारगेट द रेस्ट' की 'फिलॉसॉफी' लिए जीवन स खेलने लगी। यह खेल बडा रोमाचक था, सायक भी। प्रतिदिन अपना नख-

ि उ नवा क मार न्नि माधो दुम्या क मावर दन्ि का क्न्द्र
बन रहना चना का प्रतिमा उन्नति त्यगा। प्रतिनि मा क
हृद म भेद नी नमे पकडाक उनन जैन मा का सौ नानी हिम्म
दानो का मुर बन क दिया था। चना का नीन नी नितन थ।
आय वह मा का दनी था माय अपन नि उना था। उन नतान
था कि वह अपन मना दिना भा बहना औ एक भाई वाला परिवार
का पान रही है।

जिन वद चना न नौकरी आरम्भ की थी उनी वद मा फिर
टनहिया करन नगी थी। उन दिन मा की नविदन नकी खराब
थी कि चना को ट्रेवमन्ट नही मिल सका। यह वम भी दो मा
यह मिलसिला क्या अपन साथ मुझे भी माकी—नित नवरा म
कहती चना तभी न मौन्यिा उनकी चली गई थी। वह क्या
कर गई थी मा म लकिन ठीक ही ता कहा है उनन। मा अब भी
बच्चे पा लिए जाएगी ना पालना कौन। दे नोग प्रक्टीकल होना
नहो जानते। नन को चना मा स आगे नहीं मिला सकी थी न
मा ही चना म। मा न अचना का जन्म दकर आपरेशन करवा
लिया था। अब यह अचना न हाती ता—रचना सोचती है तब
म कितना फक पडता वह एक माडी प्रति मार और ले नकती।
लकिन अचना का वह प्यार भी बहुत करती है चाहती है कि उसे
खूब पढाए डॉक्टर बना सके

टाइप म मटिक हान पर रचना न स्वय क बारे म सोचा था।
उमक उत्न रक्त न कामना ता चुकी थी लेकिन इस कामना का सौदा
विवाह स करना उस मजूर न था। और फिर अभी जल्दी क्या है ?

खटाखट टाइप कर रही रचना की बगल म सुधीर आ खडा हुआ
था, मिस कपूर, आज शाम को कॉफी के लिए कम्पनी दगी ' रचना
न पलभर रुककर दखा था बिलकुल फिल्मी हीरो सा हैंडसम था
वह बस यही क्वालिफिकेशन काफी थी। फिर एक शाम क
अनक शाम उनकी साथ-साथ काफी सिप करते हुए बीती
शायद व विवाह की सोचते लकिन एक शाम रचना बॉस के

चली गई। इतनी सी बात का लकर सुधीर न वह हगामा मचाया कि रचना सह न सकी। यदि प्रेम का अथ व्यक्तिगत स्वतत्रता का भी अपहरण है तो रचना बाज आई ऐस प्रेम से। अब क्या वह लाइफ को एनजाय करना छोड देगी ? सुधीर से शारीरिक नकटय के क्षणा मे रचना केवल उन उत्तजक क्षणा म अपने रक्त म जागी कामना की सतुष्टि चाहती थी इसके पर न उसन कुछ सोचा था, न सोचना चाहती थी। सेक्स इज नो टैबू फॉर मी' अपन आपसे कह रही रचना के सम्मुख मा अनायास आ खडी होती जो अब भी सीता सावित्री की कथा आसू बहाकर पढती-सुनती है। सीता, सावित्री, मा

सुधीर के रिक्त स्थान को भरा फीरोज ने। रचना को फिर लगा कि वह फीरोज म प्रेम करने लगी है और फीराज उससे। रचना फिर एक शाम बॉस के साथ चली गई लेकिन फीरोज न कोई हगामा नही मचाया। अब, प्रेम का क्या यह अथ है कि ऐसी नाजुक बात पर भी प्रेमी कोई आपत्ति न करे ? रचना फिर सह न सकी, बाज आई ऐसे निर्वैयक्तिक प्रेम स। फीरोज का अपना शरीर दत रचना को लगा था कि वह कुछ बिखरने लगी है बिखरी जा रही है उस सतुष्टि म जान कसी एक मरीचिका सी असतुष्टि जाग उठी थी बाहो के भवर मे डूबने की कामना के साथ किनारे का एक स्वप्न भी जाग उठा था। लेकिन जिन्दगी को खुली आखो स देखकर स्वीकार करनेवाली रचना ने उस स्वप्न को 'फुलिश' कहकर झटक दिया था।

और आज, कल की उस रगीन रात के बाद यह सवेरा इतना बदरग क्यो लग रहा है—चादर फकती रचना उठकर बैठ जाती है। क्या उसे अमरकात की सज पर सोने की ग्लानि है फुलिश, कदापि नही तो फिर वह प्रसन्न क्यो नही हो पा रही है उसन अपना पम खोया, वह आडर निकाला जा अमरकात न कल एक चुम्बन के साथ उसके पस म रख दिया था रचना अब स्टनो नही, सेक्रेटरी है, वेतन म पूरे सौ रुपये की अभिवद्धि हुई और इसके साथ बॉस के साथ अनेक रगीन साझे बिताने का परोक्ष निमन्त्रण

मो। इसे वहन ह लाइफ म 'राइज' करना लेकिन लकिन रचना
खुश क्या नहीं हो पा रही है। क्या नहीं वह दौडकर मा को यह
खुशखबरी सुनाती, आखिर रचना की तरक्की म परिवार की भी तो
खुशहाली है। अब मा को अधिक रुपय दे सकेगी क्या यह एक
बहुत बडी खुशी की बात नहीं, रचना को लगता है वाकई यह बडी
खुशी की बात है। वह मा को आवाज देना चाहती है लकिन उसका
गला रुंध-सा जाता है। वह जानती है कि मा यह खुशखबरी सुन
कर केवल एक ठडी गहरी सास खीचेगी जसी वह पहल भी रचना
की हर तरक्की पर खीचती रहती और रचना उस ठडी सास को
झेल नहीं पाएगी वह थकी-सी फिर बिस्तर पर बठ जाती है।
सोचन लगती है कि उसकी उम्र क्या है ट्वेंटी एट आनली, अभी
तो वह काफी यग है अभी तो वह काफी एनजाय कर सकती है
और भी 'राइज' कर सकती है। रचना को धूप बुरी लगन लगती
है। वह खिडकी बन्द कर दती है, कमरा अधरा हो जाता है। वह
'स्विच' आन कर देती है। धूप की रोशनी स यह कृत्रिम रोशनी
अधिक सह्य है

रचना का ध्यान फिर अपनी नायलान जार्जेट की एंटीक्रीज साडी
पर जाता है उस बरबस लगता है जस इस साडी म सिकुडन ही
सिकुडनें हैं। दरवाजा बन्द कर वह साडी उतार फेंकती है, फिर
चोली भी उतार देती है। ब्रेजियर और पटीकोट पहने ड्रेसिंग टेबुल
के सामने आ खडी होती है, डायटिंग न तराश हुए जिस्म को तराशा
ही रहन दिया है क्षीण कटि और उभरा वक्ष—निस्सन्देह इस
सुडौल जिस्म क आकषण का जवाब नहीं वह इस शरीर म ज्वार
सी जागती कामना की तप्ति के क्षणा म भी सावधान रही है कभी
'एबाशन' की भी जरूरत नहीं पडी दपण म रचना के पाश्व म
मा आ खडी होती है सीता-सावित्री की कथा सुनकर आसू बहाती
मा, बच्चो को जन्म दे देकर बेडौल होती मा मा उसे बाहर बिखरी
धूप-सी असह्य लगने लगती है

पार्वती एक

जेठ की दोपहरी साय साय कर रही थी। निरभ्र नीले आसमान से धूप बरस रही थी और उस चिलचिलाती धूप म एक तपता सन्नाटा धरती से आसमान तक फला हुआ था। तिनके को दातो से चबाती पावती छत पर खडी आसमान को देखे जा रही थी। आसपास के टूट फूटे घरो की छतें सूनी थी—भला ऐसी चिलचिलाती दोपहरी म छत पर आता भी कौन ? लेकिन पावती को वह तपता सन्नाटा वह चिलचिलाती धूप कुछ अच्छी लग रही थी। सूने आसमान मे एक चील चक्कर काटने लगा थी पावती को वह चील भी अच्छी लगी। कैसे पख फैलाए ऊंचे ऊंचे उड रही ह, सोचती पावती ने स्वय को देखा काश! वह भी एक चील होती! और पावती को लगा जस उसने कोई ऊची बात सोची हो।

तिनको को दातो से कुतरकर थूकती पावती न अपन आपको गौर से दखा। याद आया हथेली भर के गोल शीशे म आजकल जब वह अपन को स्खती है तो देखत ही रह जाती है। उस लगता है जैसे उसका सावला रग निखर आया है निखर रहा है, उसकी आख बडी-बडी लगन लगी हैं उसके होठ मीठे मीठे होने लग हैं! कल पडास का घनश्याम उसे जाने कैसी निगाहो स दख रहा था कि वह शरमा गई थी। घनश्याम बचपन से उसे 'भूतनी' कहता आया था और वह उस जीभ निकालकर मुह चिरा दिया करती थी। घनश्याम भी वही है वह भी पावती ही है फिर य क्या हुआ कि घनश्याम अब उस 'भूतनी' कहने के बजाय जाने कसी निगाहो स दखने लगता है और उसके मुह चिराने वाले होठो पर अनायास लीडर फिल्म का गीत आ जाता है 'दया र दया लाज मोहे लागे '

परसो से पावती का मन ऊचे ऊचे ही उड रहा था। वो जो गली के कोने वाले मकान मे रहनेवाले सेठ हरप्रसाद की लडकी अजू दीदी है न, वो उसे 'सनीमा' दिखाने ले गई थी 'देव दास।' आखो मे ढेर-सा काजल लगाकर पावती अजू दीदी के साथ सिनेमा देखने गई थी। अजू दीदी बी० ए० म पढ़ती है, पावती को तो अपना नाम भी लिखना नही आता—तो क्या हुआ पावती किसीसे कम थोडे ही है। अगर पावती भी अजू दीदी-सा 'पौडर' लगा ले, रेशमी साडी' पहन ले और बन बनकर बातें करे तो पावता भी अजू दीदी सी लगे। लेकिन फक केवल इतना है कि अजू दीदी सेठ की इकलौती बेटी है और पावती पूरन-चद हलवाई की तीन ब्याही बेटिया के बाद की चौथी अनब्याही बेटी है, अजू दीदी 'मोटरिया' म बैठकर 'कालिज' जाती है और पावती दो कोठरिया वाले टूटे फूटे घर म अधी मा, तीन बरस के रिरियाते भाई लल्लू, और मैली गधाती धोती पहने बाबू के साथ शाम से सुबह और सुबह से शाम करती होती है।

सनीमा' मे अजू दीदी के बगल मे बैठी पावती कनखिया से अजू दादी को देखती रही थी। आज तो अजू दीदी बडी मीठी मीठी महक रही है—पावती को याद आई, बाबू की मैली धाती से उडती घी तल की गध उह पावती ने घबराकर आचल नाक से लगा लिया, फिर हसी, यहा बाबू कहा—वह तो अजू दीदी के बगल मे बठी सनीमा देख रही है। पावती 'सनीमा' देखती रही लेकिन उसकी समझ मे खाक न आया कि आखिर किस्सा क्या है। सिनेमा देखती अजू दीदी ने जब-जब रूमाल आखो से लगाया पावती ने भी जोर से सास भरी कि अजू दीदी सुन ले कि वह भी रो रही है सिनेमा के बाद अजू दीदी के साथ मोटर मे बैठकर घर लौटती पावती को अजू दीदी ने देवदास की पूरी कथा सुनाई। यह भी बताया कि देवदास पावती से इतना प्रम करता था कि पारो को न पा सका तो उसने अपना जीवन नष्ट कर दिया और पारो और चद्रमुखी दोनो ही देवदास से प्रेम करती हुई भी न उसे पा सकी,

न बचा सकी । सहसा अंजू दीदी हँसी—"तू भी तो एक पार्वती है । और पार्वती को लग रहा है जैसे इस दोपहर में उठने गर्म हवा के ये झोंके बसन्त की पुरवया है मैली साड़ी में लिपटा उसका बदन जैसे कच्ची अमिया-सा महक उठा है और जैसे वह बिलकुल ऊंचे ऊंचे उड़ती एक चील है ।

पार्वती को प्यास लग आई थी। दोनों हथेलियों को जोड़कर अंगड़ाई लेती पार्वती ने एक गहरी सांस ली, निचला होंठ काटा अपने बदन को एक भरपूर नजर से देखा और दौड़ती-सी कोठरी में आ गई । मटके से पानी निकालकर पीती पार्वती ने देखा मां फटी चटाई पर पड़ी सो रही थी, ललुआ भी उसके उघड़े स्तन से होंठ चिपकाए सो रहा था—मुआ सो रहा है तभी तक चैन है अभी उठेगा और री री करता पीछे पीछे घूमने लगेगा, दिन में दस बार तो नाली पर बैठाना पड़ता है और दसों बार धोना पड़ता है एसा गुस्सा आता है कि मुए का गला टीप दे ताकि छुट्टी मिले । पार्वती ने घृणा से होंठ सिकोड़कर मुंह फेर लिया अरे, आज तो उसे घनश्याम के यहां ज्योंत में भी जाना है । ये लो वो तो भूल ही गई थी, आज तो वो भी सज के जाएगी, अंजू दीदी ने कहा था—तू भी तो एक पार्वती है ।

पार्वती ने ढेर-सा तेल लगाकर बाल जमाए जूड़ा बांधा, नहीं बंधा तो फिर चुटीला लगाकर चोटी ही गूंथ ली । लक्स साबुन की महकती टिकिया से मुंह मल मलकर धोया । कल उसने बाबू की जेब से पूरा एक रुपया चुराकर ठेले पर पौडर का एक डिब्बा खरीद ही लिया था क्या करती अब उससे 'पौडर' के बगैर नहीं रहा जाता । मां तो अंधी है और बाबू को क्या पता लगेगा कि उसने 'पौडर' लगाया है ? इस 'पौडर लगाने की कल्पना से वह पिछली रात कई बार पुलकती रही थी देखा । पौडर' लगाकर वह भी अंजू दीदी-सी महकने चमकने लगी है फिर काजल लगाया, बड़ी-सी बिंदिया चिपकाई और मां की एक पुरानी सस्ते रेशम की साड़ी ऊंची नीची पहनती गुनगुनाने लगी—दैया रे दैया लाज मोहे

लागे मा पडी सो रही थी, मो और यह कम्बख्त ननुआ भी वह घट भर म गई और आई ।

गली पार करती पावती को एक ही वात खटक रही थी। अजू दीदी पहन ओढकर कैसे तनकर चलनी है सीना कैसा उठा उठा रहता है, वो बाजार की बनी पहनती है न इसीलिए। पावती तो अपने हाथा मग्न कपडे की सीकर पहननी है। बिलौज के नीचे बाजार की बनी पहने हो तो बात ही और हो जाती है। ठीक है, 'पौडर' का डिब्बा वह खरीद हो चुकी अब की अजू नीदी के यहा जाएगी तो दो वाजार की बनी उठा लाएगी। चोरी थोडे ही होगी य—कित्ते तो अजु दीदी के गहने कपडे पडे रहते है, उसने कभी छुए ? लेकिन पावती कब तक मन मारे, बाजार की बनी के लिए उसका मन ललच ललच जाता है। बाजार की बनी पहनकर जब वह भी सीने पर मे फिसलत आचल को होठ काटती हुई सभालेगी ता अरे, य तो घनश्याम ही दरवाजे पर खडा है पावती हडवडा गई।

दरवाजे मे घुसती पावती की कुहनी छून घनश्याम न फुसफुसाकर कहा—थोडी दर म छत पर आ जइयो ।'

भीतर उमस और पसीन की गध मे घिरी औरत ढोलक पीट-पीटकर सोहर गा रही थी, घनश्याम की भाभी का लडका हुआ था। पावती एक कोने म जा बैठी—उसका शरीर घनश्याम की छुअन से अब तक झनझना रहा था, ढोलक की ढप ढप क साथ उसका कलेजा धक धक् कर रहा था, नम नस म तेजो से दौडता रक्त उछल-उछलकर चेहरे पर आया जा रहा था और वह बार-बार होठ काटती आचल सभाल रही थी।

लडडू बटने लगे। घनश्याम ही बाट रहा था। लडडू का दोना पावती के हाथो म दते घनश्याम न उसकी उगली दवा दी। लडडू लेती पावती का लगा जैस उसका सावला रग सचमुच निखर आया है घनश्याम से आखें चुराती आखे सचमुच बडी-बडी हो गई हैं। उसने होठ काट, लगा होठ सचमुच मीठे हो गए हैं और उसके काना मे साफ साफ बज रहा है—तू भी तो एक पावती है ।'

पावती न इधर उधर देखा। औरत फिर ढालक पीटन लगी थी। कुछ कुछ अधेरा घिरने लगा था। पावती घनश्याम क घर वचपन से आया करती थी उसे छत की सीढिया मालूम थी। आख बचाकर पावती उठी और लरजत पैरो से छत पर जा पहुची।

छत पर पहुचत ही घनश्याम उस खीचकर आड म ले गया। एक ओर छत की दीवार थी दूसरी ओर टीन खडाकर आड कर ली गई था, इस आड मे गहस्थी का क्वाड भरा पडा था। उसी क्वाड के बीच कापती पावती का सीने स चिपटाते घनश्याम कह रहा था—अरी मैं तो तेरे लिए मर जाऊ और तू है कि हमारी तरफ देखे ही नही।'

यही तो होव इसक माहब्बत। सनीमा मे यही दिखावा जावे और सभी करे है ये सिहरती पावती सोच रही थी—पूर सोलह की है वो सब समझे है—जिनगानी' का मजा इसीम है और वो कसमसाते तन मन को मारकर रह जाती रही है लेकिन आज अचानक यह सनीमा कसे सच होने लगा है? घनश्याम को तो वह वचपन से जानती थी लकिन वही घनश्याम उसका देवदास बन जाएगा—यह वह कहा जानती थी?

गडेरिया खाएगी घनश्याम ने पूछा और एक टुकडा उठाकर पावती के मुह म ठूस दिया। गुलाबजल से गमकती गडेरी चबर चबर चबाती पावती का तन मन गमक उठा। उस दिन बाबू स गडेरिया के लिए दो आन मागे थे तो बुढवा आखें निकालकर कैसा चिल्लाया था पैस नही दिए थे। लकिन घनश्याम को कस पता कि उस गडेरिया इत्ती पसन्द हैं, पूरी दोना भर है शायद घनश्याम को यह भी पता हो कि पावती को मुक्कटबाल हलवाई का कलाकन्द बेहद पसन्द है यदि वह कह दे तो घनश्याम उसके लिए पूरा पाव भर कलाकन्द भी लाकर रहेगा—घनसू उसस पियार' करता है न!

उसन कनखी से घनश्याम को ताका। हाय राम! कसा खपसूरत लग रहा है य घनसू, बिलकुल दलीप कुमार जैसा, वैसी ही नजरिया

मे ताक भी रहा है। बालो म खुमबूदार तेल लगा रखा है, उजल उजल कपडे पहने रखे है और और पावती को लगा कि सच्चई घनश्याम बिलकुल देवदास है और वो भी बिलकुल अपने देवदास की पारो

गडेरी का एक और टुकडा पावती को खिलाते घनश्याम ने उसकी कमर मे हाथ डालकर उस करीब खीच लिया, सुन पावती मैं बेम्बई जा रहा हू, चलेगी मेरे साथ। मैं तुमसे इसक करता हू और तर बिना नहीं जी सकता।'

पावती को लगा जैसे सचमुच बसत की पुरवैया चलन लगी है जस सचमुच उसका बदन कच्ची अमिया सा महक उठा है और वह सचमुच उस चील सी ऊचे उड गई है

'बाल न जवाब द री' घनश्याम ने पावती की चुम्मी ले ली। हथेलिया स मुह ढकती पावती को नस नस मे बजन लगा, दैया र दैया लाज मोह लाग ।

'कब चल रहे हो' पावती न पूछा। सोच रही थी कि ये 'सुरग के दरवज्जे उसपर अचानक कस खुल गए। घनश्याम की बाहो म लिपटी पावती को वह गधाता नरक याद आ रहा था जिसम वह अधी मा, रिरियात लल्लू और मैली गधाती धोती पहने बाबू के साथ सुबह से शाम और शाम स सुबह करती होती है।

'कल, बिलकुल कल चल देंग। मैने दो सौ रुपये जोड रखे हू। बस बम्बइ पहुचने की दर है फिर तो रुपये ही रुपय हो जावेंगे। बम्बई म तो सोना बरसे है री। फिर तू साथ रहगी तो हम दोनो खूब मजा लूटेंगे। बस तू हा कह दे,' घनश्याम पावती की सीना सहलान लगा था।

पावती को लगा जस वह सपना देख रही हो। पावती ने तो समझ लिया था कि इस नरक से उसका छूटकारा कभी नही होगा। तीन बेटिया के ब्याह के कज स दबा बाबू उसका ब्याह नही कर पा रहा था। बडा चाव था पावती को ब्याह का लेकिन ये घनसू तो उस ब्याह से भी बढकर 'इसक मोहब्बत' दे रहा है पावती

की आसा मे साबुन पौडर बिंदिया, लाली और बाजार की बनी घूम गई घनसू उसे सब ला के दिया करगा अब क्या जरूरत है उस तरसन की ?

तुम कहते हो तो मैं ना थोड़े ही करूगी ' पावती ने कहा और उमग कर घनश्याम से सट गई । उसकी पीठ तपते टीन को छू रही थी और देह में मीठी मीठी आच तपने लगी थी घनश्याम की देह उसे एसी लग रही थी जसे महकता-गमकता गाछ हो, जिसकी छाह म उसकी आखे भूमकर मुदी जा रही थी जिससे लिपटकर उसका तपता बदन ठढाया जा रहा था ।

'तो फिर कल दोपहर दो बजे तयार रहियो । चपके से निकल चलेंगे । गाडी चार बजे जावे है, घनश्याम ने एक और गडेरी उसके मुह म ठूस दी और सीने पर चुटकी काट ली 'तू कित्ती खपसूरत है री ।'

'तुम भी कित्ते अच्छे हो । सुनो जी हमे साबुन की एक टिक्की लागे हम जरा अपन पटीकोट - बिलोज रात म धो लें, 'कहती पावती घनश्याम से और सट गई थी । उसे नय मिले अधिकार के उछार म इतराना बडा अच्छा लग रहा था ।

'धत्तेरे की मागी भी तो क्या साबुन की एक टिक्की, अर हम तो अपना रानी पर जान कुरबान कर सकत ह घनश्याम सीना ठोककर हस पडा था पावती मगन हो गई थी जैसे 'सुरग पा लिया हो ।

पावती चुपके से नीचे उतर आई औरते विदा होने लगी थी । भीड मे मिलकर पावती बाहर निकली । दरवाजे पर घनश्याम फिर खडा था । चुपके से साबुन की टिक्की पावती को देत घनश्याम फुसफुसाया 'याद रखियो कल दो बजे ।'

घनश्याम की चुम्मी और चुटकी म डूबी धम धम पाव रखती थिरकती सी पावती घर पहुची तो उसे यही लग रहा था कि पिछले घटो म जो कुछ हुआ कहीं वह सब सपना तो नहीं था ? लेकिन घनश्याम की दी हुई साबुन की टिक्की उसके हाथ म थी गाला

पर चुम्मी और सीने पर चुटकी की झनझनाहट अभी भी हा रही थी और पूरे पाव भर कलाक न्द का दोना लिए घनश्याम जैसे उसके आगे पीछे घूम रहा था अब अकडे अजू दीदी उसके सामने ? अजू दीदी का क्या पता कि अब पावती उससे कित्ती ज्यादा भागवान हो गई है, कोई पार्वती से 'इसक' करने लगा है, अजू दीदी तो 'इसक' वाली सनीमा म देखती है।

कोठरी मे अधेरा था, लल्लू गला फाड फाडकर रो रहा था। पावती न लालटेन जलाई, देखा लल्लू पाखाने से सना चीख रहा है और अधी मा बडबडा रही है। कहा मर गई थी हरामजादी रेशमी साडी उतारकर अपनी मैली धोती खासती पावती चीखी, 'चुप कर री मुहझौसी, मौत म गई थी, देर हो गई तो क्या करू परान क्या दे रही है।' पावती ने लल्लू को एक हाथ पकडकर टाग लिया, नाली पर ले जाकर धम से पटका और उसके गाल इतन जोर से मसले कि लल्लू और चीखन लगा। पावती का जी कर रहा था कि जान से पहले वह इस ललुआ के साथ अधी माई का भी गला टीपती जाए मरे कम्बख्त अब कल स पता चलेगा आटे-दाल का भाव, निगोडा ने लौडिया समझ रखा है, जन के इस पिल्ले को डाल दिया और अधी चुडल रात दिन चिल्लाती है और वह बुढवा बाबू रोटी गरम न हो तो राक्षस बन जाता है जाए सब भाड म कल स पावती की दुनिया दूसरी होगी, इसक मुहब्बत की दुनिया, साबुन-पौडर की दुनिया, चुम्मी-चुटकी की दुनिया पावती न लल्लु को दो धौल जमाकर ढकेल दिया और आटा गूथने लगी। आज और सब के पेट मे आग लगा दू, फिर पटीकोट-बिलोज धान है।

पावती रोटिया सेंक रही थी। लल्लू पास आकर खडा हो गया, नाक बह रही थी, आखो से बहे आसू अभी सूखे न थ। "दिया खाती दे' लल्लू ने हाथ फला दिए। कल इसे रोटी कौन देगा, सोचती पावती की अगुली जलते तवे से छू गई, अधी मा आज बहुत कराह रही है घुटने का दद उठ आया है सायन ला बाबू भी आ गया। आज इतना थका मादा है कि लगता है रोटी भी

नहीं खा सकेगा।

ललुआ को रोटी पकड़ाते, बानू को रोटी परोसते पावती का मन जाने कैसा होने लगा। वह बचपन से ही ढीठ और मुहज़ोर रही है, किसीको पीटते देख उसे हंसी ही आती है ललुआ को वो जब-तब पीट देती है, मा को गालियों का जवाब गालियों से देती है और किसीकी भी परवाह नहीं करती। फिर आज यह मन कैसा कमजोर हुआ जा रहा है। पावती से रोटी नहीं खाई गई।

मले चीकट बिछान पर लल्लू की बगल में सोई पावती रात भर करवटें बदलती रही, उसकी दूसरी बगल में घनश्याम आ लेटा था और उसके लरजते सिहरते शरीर को बाहों में भरे ले रहा था पावती ने करवट बदली। लल्ल ने बिस्तर गीला कर लिया था। बम्बई की रंग बिरंगी महकती चमकती दुनिया में घनश्याम के साथ घूमती पावती बार बार रिरियाते लल्लू से टकरा रही थी उसका जी चाह रहा था वह इस गंदे मरियल छोकरे से दूर भाग जाए लेकिन वह जैसे ही कदम उठाती दो नन्हे कमज़ोर हाथ उससे लिपट जाते मैं चली जाऊंगी तो ये लौंडा तो सच्चई मर जाएगा

सवेरा हो गया था पावती लल्लू को नाली पर बैठा रही थी, नहीं तो फिर सब गन्दा कर देगा कमबखत। ज़रा माई के घुटन में तेल भी मल दूं रात भर मुई खाँसी कराहती रही है

दोपहर दो बजे घनश्याम आया। साबुन की टिकिया उसे लौटाते पावती रो पड़ी हम नहीं जा सकेंगे घनसू हमें माफ करना और भूल जाना !' पावती ने दरवाज़ा बंद कर लिया था। दूसरे दिन पावती ने सुना घनश्याम चला गया था और वह यह सोच रही थी घनश्याम के साथ चली ही क्यों न गई ?

आवर्त्त

कॉल-बेल सुनकर दरवाजा खोलते ही मैं सुखद आश्चर्य से अवाक रह जाती हू तराशी हुई मूछो के नीचे अपनी तराशी हुई मुस्कान लिए विजी ही तो है बिलकुल विजी एकदम विजी ओह ! मुझे अवाक देखकर विजी हस पडता है नितान्त परिचित हसी के खन कते स्वर इतने वर्षों के अन्तराल के बाद भी कितने अपने लगते है !

'हलो सुमी ! अरे भई अन्दर आने के लिए भी नही कहोगी, अच्छा तो मैं ही पूछता हू मे आई कम इन मैडम !' विजी का स्वर गूजता है। मैं अभी भी अवाक हू, विश्वास नही होता कि ऐसे इन क्षणो विजी मेरे सम्मुख ऐसे आ खडा हो सकता है। इतना अप्रत्याशित है यह सुख, इतना अनमोल इतना निजी है कि लगता है मैं सपना देख रही हू।

'डू कम इन, विजी' कहती मैं ड्राइगरूम की ओर बढती हू लम्बे डग भरता विजी मेरे साथ है। 'मे आई टेक माई सीट मडम विजी छेडना-सा हसता है और अटची दीवार मे टिका सोफे म धस जाता है। मैं भी हस पडती हू, अब सपना सच लगने लगता है।

कुछ क्षण ऐसे ही बीतते हैं। विजी मुझे देख रहा है। उसकी दृष्टि का परिचय अपनापन मुझे छू रहा है। तराशी हुई मूछो के नीचे तराशी हुई मुस्कान कमरे के वातावरण मे बिखरकर मेरे सारे परिवेश का स्पन्दनो से भरे दे रही है मैं अपनी साडी के आचल का बाए कन्धे मे दाए कन्धे पर लेकर अपने को ढक लेना चाहती हू। पैरो की उगलियो तक साडी को हाथ से खीच देती हू। जाने कैसा मीठा सकोच अगो म सिहरन लगा है मैं असहज हुई जा रही हू।

सुमी, क्या हो गया है तुम्हे ? न कोई बात, न कोई खातिर,

और हम हैं कि हजार मील से तुम्हारे लिए दौड़े आ रहे है !'' विजी का स्वर इतना निकट और इतना दूर लग रहा है कि फिर मुझे लगता है मैं सपना तो नहीं देख रही हू !

'ओह, हा, क्या लाग, ठडा या गरम ? मैं कठिनता मे बोलती हू, सपन म शब्द ढूढे नहीं मिलत ।

'चलो तुम कुछ बोली तो, मुझे तो लगने लगा था कि मैं किसी और सुमी को देख रहा हू । कहा वह नान-स्टॉप बक-बक करनेवाली नटखट सुमी, और कहा यह मौन व्रत धारण किए महिमामयी सुमी,' विजी उस नटखट सुमी की याद दिला देता है जो उसकी किताब छीन-कर उससे किताब के बाहर क इतने प्रश्न पूछती थी कि विजी का सर दर्द करने लगता था ।

तो विजी को उस नटखट सुमी की इतनी याद है। मेरा मन धड़कने लगता है । 'अभी आई' कहती मैं उठकर भीतर आ जाती हू । चाय बनाने के साथ मैं सहज हो लूगी । मैं चाय का पानी बिजली के स्टोव पर रख देती हू । जी चाहता है साडी चेंज कर लू । चेंज करने लगती हू । नीला रग विजी का फेवरिट है नीली साडी पह नती हू । पाउडर का पफ मुख पर फेरते दपण के सम्मुख अपनी आखो से दृष्टि मिलती है, उस दृष्टि मे विजी झाक रहा है मेरे सवरे रूप की यह विजी दाद देता है । मैं वर्षों पूर्व के कुछ मीठे क्षणों को फिर जीती हू और चाय की ट्रे लिए ड्राइगरूम म आ जाती हू । अच्छा हुआ आज आया नहीं है वरना विजी के साथ मीठे एकात के य क्षण इतने एकातित न हो पाते ।

श्रीधर भी तो नहीं हैं । श्रीधर मेरे पति वे ऑफिस की ओर स तीन दिन के लिए कल ही तो बाहर गए हैं । ऐसे म विजी के साथ एकात के ये क्षण ? तो क्या हुआ ? विजी मेरा बचपन का मीत ही तो है विजी मन का मीत भी था विजी की और मेरी आखो ने जीवन भर के साथ के सपने साथ-साथ देखे थे किन्तु जैसे हर सपना पूरा नहीं होता, हमारा यह सपना भी पूरा नहीं हुआ था । पडोस की रिश्तेदारी हमारे दोनों परिवारों को पसन्द नहीं थी ।

समुद्रतट पर फ्रॉक और नेक्र मे दौड लगाने वाले सुमी और विजी उसी समुद्रतट पर एक दूमरे मे डूबे लहरा को गिनने का कभी न खत्म होने वाला खेल खेलने लगे और फिर यह खेल इसलिए खत्म हो गया कि जीवन ने उन्ह लहरो को गिनने स अधिक महत्त्वपूर्ण कामो के लिए बुला लिया। विजी और मैं दोनो ही बहुत स्वस्थ थे, हमारा हाजमा अच्छा था, हमे नीद गहरी आती थी और हमारे स्वस्थ कन्धो पर रखे हमारे सिर भी इतने सन्तुलित थे कि लहरो के गिनने का खेल खत्म होने पर हमने आत्महत्या की नही सोची। विजी की और मेरी राह अलग हो गइ और हम उन राहो पर चल भी पडे मेरे लिए विजी मेरे एकान्त क्षणो का वह सपना रहा आया जो पूरा न होने पर भी भुलाया नहीं जा सकता और विजी के लिए मैं मेरे विवाह पर विजी ने मुझे एक लॉकेट प्रेजेन्ट किया था। लॉकेट के साथ एक चिट थी, लिखा था, 'मुहब्बत मे हम तो जिए हैं, जिएगे, कोई और होगे वो मर जाने वाले।' प्रेम का जीवन से यह समझौता मेरा जीवन दशन बन गया था मेरी नम आखा मे विजी का चित्र समय की धूल से भी धुघला नही पडा था। मैंने उसके प्यार मे मरना नही, जीना सीख लिया था।

आज वही विजी आठ वर्षों बाद मेरे द्वार आया है। आया नहीं है, श्रीधर भी नही हैं। दोना बच्चे स्कूल गए है। विजी के साथ मधुर एकान्त के इतने वर्षों बाद अनायास मिले य क्षण मेरे रोम रोम मे कपन जगा रहे है मैं विजी के मन मे झाकना चाहती हू क्या सुमी भी विजी की धडकनो मे जीवित है ?

चाय की ट्रे टेबल पर रखकर मैं बैठ जाती हू। सोफे पर विजी अकेला है, मैं उसके पाश्व मे बठ सकती हू किन्तु हमारे शरीर सीमाओ को जानते है, मानते भी हैं। मेरा शरीर विजी का स्पश नही चाहता, लेकिन मन विजी के स्पश के लिए पागल हुआ जा रहा है। विजी अखबार देख रहा था। मुझे आया देखकर अखबार रख देता है। हम एक दूसरे की आखा मे देखते है विजी की आखो मे मुझे अपना प्रतिबिम्ब कापता प्रतीत होता है विजी की आखें मुझे

बहुत तरल लगती हैं मुझे लगता है इस तरलता म अभी सुमी जीवित है।

मैं विजी के लिए चाय बनाती हू। मैं चाय मे शक्कर नही डालती, प्याला उसकी ओर बढा देती हू। मैं चाय म शक्कर नही लेता, इसको याद है तुम्हें,' कहता विजी का स्वर भी तरल हो जाता है इस तरलता मे कि ही अतरग सुधियों के क्षण गूजने लगते ह अपने लिए चाय बनाती मेरी उगलिया कापने लगती है मेरी शिराओ म एक मीठा उ माद थरथराने लगता है मैं चाय का प्याला होंठा से लगा लेती हू आवेश म थरथराते होठो से चाय देर तक सिप करती रहती हू।

विजी इतनी दूर से आज मेरे लिए आया है केवल मेरे लिए, सोचती मैं अपने प्रति एक मीठी पूणता से भर उठती हू विजी अब भी मुझे देख रहा है, तुमने नीली साडी पहन ली सुमी, नीला रग मेरा फेवरिट है यह भी तुम्हें याद है'' विजी का स्वर और भी तरल हो आया है मेरा तन मन भीग रहा है भीगता जा रहा है!

'कुछ अपनी सुनाओ विजी, कैसे हो?' मैं पूछती हू। नितात साधारण से इस प्रश्न का पूछने मेरे होठ आवेश से थरथरा रहे है म बहुत कुछ कहना चाहती हू लेकिन शब्द खोए जा रहे हैं मैं स्वय भी तो खोई जा रही हू।

'मैं बिलकुल ठीक हू सुमी। जीवन मेरे प्रति मेहरबान रहा है। तुम्ह सुनकर खुशी होगी कि तुम्हारा विजी अब एक अच्छा खासा बिजनेस मगनेट बनता जा रहा है। पिछले वर्षों मे मैंने हजारो बनाए हैं। बैंक मे बढता बैंक बलेंस है घर म खूबसूरत बीवी है बच्चे हैं, मन म अब भी तुम हो।' विजी का स्वर मुझे इतना गहरा लगता है कि मैं उसम डूब जाती हू मुझे लगता है मैं पूर्ण हो गई हू अब कुछ पाना शेष नही रहा केवल एक कामना जागती है कि आज हम फिर उसी समुद्रतट पर देर तक बैठें लहरो को गिनते रहें गिनते रहें!

बीच पर चलोगे विजी?' पूछना मेरा स्वर इतना भावुक है कि

मुझे लगता है मैं फिर वह सोलह वर्षीया तरुणी हो आई हू जिसके लिए लहरो को गिनना सपनो को बुनना था और मन के मीत के साथ सपनो को बुनने मे अधिक और कोई कामना जिसके लिए शेष न थी। 'बीच पर चलोगे' मैं ऐसे पूछती हू जैसे अनुमति पाने के लिए नही, अनुमति देने के लिए कह रही होऊ। भला विजी को क्या आपत्ति हो सकती है? वह स्वय भी यही चाह रहा होगा, शायद कहने म सकोच हो, इसलिए मैंने ता कह दिया।

बीच पर क्या?' विजी का स्वर एकाएक अपरिचित हो जाता है। 'मेरे पास समय कम है सुमी, एड देन आइ एम बुक्ड फार द ईवनिंग एंगेजमेंट्स। मुझे क्षमा करना कि मैं तुम्हे अधिक समय नहीं दे सकता। और हा तुम्हारे पति, मि० श्रीधर कब तक आएगे? मुझे उनसे कुछ काम था।'

विजी का सहसा अपरिचित हो उठा स्वर मुझे झटका देता है। लहरो को गिनने की कामना लडखडा जाती है शिराओ का उन्माद थिर हो जाता है, आवश म कापते होठ भिच जाते है 'वे तो परसो तक आएग क्या तुम ठहरोगे नही?' कहता अपना स्वर भी मुझे अपरिचित लगने लगता है। लहरो म बही जाती सुमी रुककर उन लहरो को तोलने लगती है लहरो की जानी हुई निकटता अजानी दूरियो म बदलने लगती है।

अच्छा हुआ वे नही है। उनसे कहने म मुझे सकोच भी होता। अब यह काम मैं तुम्हे सौंपता हू। यह मेरे टेंडर की एक कापी है। इस टेंडर पर श्रीधर जी की मदद से यह आर्डर मुझे अवश्य मिल जाएगा। हजारो का फायदा है इसम। मेरा इतना काम तुम्हे करना ही होगा, मेरी अच्छी सुमी और मैं जानता हू तुम इतना अवश्य कर दोगी। ठीक कह रहा हू न?' विजी टेबुल पर रखे मेरे हाथ पर हाथ रख देता है। विजी की हथेली का उष्ण स्पर्श मुझे इतना ठडा लगता है कि मैं जमने लगती हू। मेरी अच्छी सुमी कहता विजी का आत्मीय स्वर मेरे कानो मे विद्रूप सा बजने लगता है। कमर मे बिखरे स्पन्दन ऐसे घुटने लगते है कि लगता है मेरा दम भी

पर नाचता हवा में झूं। खिड़की सी मैं सहसा आहत होकर गिर पर छटपटाने लगती हूं। विजी ने टेंडर के कागज निकालकर टेबल पर रख दिए हैं। एक सप्ताह के भीतर हो जाना चाहिए। इट इज मोस्ट अर्जेंट। और हां, तुम्हारे लिए यह साड़ी, कैसी लगी है?' विजी पैकेट में से साड़ी निकालकर टेबल पर फैला देता है। नीली जार्जेट की एक ग्राउंड पर सागर की फेनिल लहरों की डिजाइन साड़ी सचमुच सुन्दर है। नीला रंग विजी का फेवरिट है और विजी इतनी दूर से आया है मेरे लिए साड़ी लाया है। लेकिन अब बीच पर नहाने के लिए विजी के पास वक्त नहीं है। मैं, विजी, टेंडर, साड़ी, मेरी घबराती आंखों में गोल वृत्त घूमने लगते हैं।

इन आठ दस बीच, सहसा विजी उठ खड़ा होता है। तराशी हुई मूंछों के नीचे तराशी हुई मुस्कान मुझे [illegible] और विजी की लगती है। हम दोनों साथ साथ दरवाजे तक आते हैं। गुड बाई, मेरी अच्छी सुमी, विजी लम्बे डग भरता दूर होने लगता है। उसने मुड़कर फिर बाय किया है मेरे हाथ भी उठ गए हैं। मुझे लगता है लहरों के फेनिल फूलों से भरी मेरी अंजलि सागरतट की रेत पर बिखर गई है और विजी उन फेनिल फूलों को रौंदता मुझसे दूर बहुत दूर हुआ जा रहा है। विजी दूर होता सचमुच ओझल हो जाता है।

'मेरी अच्छी सुमी' मैं एक एक शब्द पर जोर देकर अपने आपको सुनाती ड्राइगरूम में आ जाती हूं। मुझे लगता है मैं रो पड़ूंगी लेकिन मैं हंस पड़ती हूं। आज विजी आया भी था या मैंने केवल एक सपना देखा है? आंखें मूंदती खोलती मैं अपने आपसे पूछती हूं। विजी के आगमन के प्रमाण टेंडर के कागज और साड़ी टेबल पर रखे हुए हैं। मुझे सच समझ में आने लगता है। अभी विजी आया था। श्रीधर परसों आएंगे। एक सप्ताह के भीतर विजी का काम हो जाना है। इट इज मोस्ट अर्जेंट। और विजी ने यह काम मुझे सौंपा है, अपनी सुमी को, अपनी अच्छी सुमी को। बस इतना ही तो, सोचती मैं सोफे पर गिर पड़ती हूं। अब मैं बिलकुल सहज हूं।

कगार पर

"अरे अरे !" कहते हेमन्त ने बाह पकडकर खीच लिया, "देखती नही आगे 'डेंजर' की लाल तख्ती लगी है ? इसके आगे पानी गहरा होगा और तुम हो कि कगार पर बच्चो की सी अठ खेलिया कर रही हो ! अभी एक कदम भी आगे पड जाता तो ?"

रजना झटके से पीछे खीच ली गई थी, अत लडखडा गई। रेत पर 'धम से जा गिरी। 'हा एक कदम भी आगे बढ जाता तो !' डेंजर के लोहे के पोल पर लगी लाल तख्ती देखती वह तो' के आगे की सोचने लगी थी तो तो क्या होता ? पानी आगे गहरा होगा वह डूबने लगती। फिर क्या होता ? हेमन्त उसे बचाने बढता, लहरो मे समा जाने से रोकने के लिए स्वय उन लहरो म कूद पडता, या कगार पर खडा सहायता के लिए चीखता या कुछ नही करता बस, उसे डूब जाने देता ?

रेत पर गिरी पडी रजना के बगल म बैठा हेमन्त सिगरट सुलगाने लगा था। उसके माथे पर ढेर सा पसीना आ गया था। सिगरेट सुलगाकर होठो से लगाते वह रुमाल से पसीना पोछने लगा था, "तुम भी बस, जान आफ्त मे डाल देती हो ? अभी कुछ हो जाता तो !" हा, यही तो रजना सोच रही थी।

विशाल सागर के इस एकान्त कगार पर हेमन्त और रजना प्राय घूमने आते। यह कगार, किनार की रेत, समुद्र का प्रसार, समुद्र मे डूबती अनेक साझें उनकी निकटता की साक्षी थी। पहले रजना उस ओर अकेली जाती थी। निजन स्थल पर बैठकर बालू पर रेखाए खीचना, एक और डूबते दिन को समुद्र की लहरो मे समाते देखना उसे अच्छा लगता। लगता जसे सागर ने अपनी गहराई म साझ के

सारे रंगों को उतार लिया है, जसे किसीने किसीको बाहों म समेटकर वक्ष मे उतार लिया हो। वैसे वह भावुक कतई नहीं थी। बस, नौकरी इसीलिए की थी कि भाइयो भाभियो से मुक्ति पा सके। किसी हद तक वह उद्दण्ड भी थी। कभी किसीके सामने नहीं झुकी। बस म जबदस्ती सीट घेर लेती। सिनेमा देखने जाती तो 'क्यू' तोडकर टिकट लेकर मानती। भाई भाभी ज़रा सा भी टोकने तो अनाप-सनाप बकने लगती। हा, पढने मे अच्छी थी। तीन भाइयों की सबसे छोटी अकेली बहन। माता पिता की उसे कोई स्मति नहीं। बडी भाभी ने उसे कलेजे से लगाकर पाला था, किन्तु रजना उनका आभार मानने से भी इनकार कर देती पालती नहीं तो क्या मार डालती ? और कैसे मारती दुनिया म देखने वाले नहीं थ क्या समाज नहीं था कानून नहीं था ? मारती तो मारी नहीं जाती ?

बडी भाभी गाव की थी, रजना की बक-झक पर हस देती, 'अच्छा लली जाने दे! हमने तुझे फासी के डर से ही नहीं मारा यही सही तू तो हवा म लडती है !"

रजना चलती, तो धम धम' पर पटकनी! हसती तो उन्मुक्त होकर। घटो नहाती। दिन चढे तक सोती। भाइयो के बच्चो को जब-तब पीट देती। मझली भाभी स तो उसकी हाथापाइ की नौबत आ जाती, "हम बडी न समझना बीबी रानी हमारे लडके-लडकी को हाथ लगाया तो अच्छा नहीं होगा !" क्या अच्छा नहीं होगा ? क्या कर लोगी तुम ? बबलू मुझे डिस्टब करेगा तो जरूर चपत जड़ूगी! लो, तुम्हारे सामने ही लगाती हू !' और रजना सचमुच तड से एक चाटा बबलू को जड देती है।

मझली भाभी आग हो जाती, रजना की कलाई पकडकर मरोडने लगती, 'तोड दू हाथ ?" रजना उसस गुथ जाती। बडी भाभी दौडती, "राम राम! क्या कमीना सा महाभारत मचा रखा है! छोटी, तू ही सबर कर लिया कर बहन, अब ये ननद जी तो सुनने से रही! पता नहीं, कौन-सा भूत सवार रहता है इस लडकी के सिर पर जो आफत किए रहती है !'

बडी भाभी, रोती धोती मचली को खीच ले जाती। रजना आराम से लेटकर 'मनोहर कहानिया' पढने लगती। रहस्य रोमाच की कहानिया उसे अच्छी लगती। 'मिस्ट्री मडर' पिक्चरा के लिए तो वह पागल बनी रहती। पता नही कैसे मैट्रिक मे बी० काम० तक फस्ट क्लास पाती रही। कोई चकित होता, तो तडाक मे जवाब देती 'अरे, फस्ट क्लास पाना क्या मुश्किल है। नकल की अक्ल होनी चाहिए।" लेकिन पढन मे वह सचमुच अच्छी थी। शुद्ध अग्रेजी बाल सकती थी। पहनने-ओढने का सलीका आता था। धीरे धीर मेकअप करना इतना अच्छा सीख गई कि घर मे भूतनी सी घूमती रजना और बन-सवरकर बाहर निकलती रजना को एक मानना मुश्किल हो जाता।

बी० काम० करते ही उसन मुहल्ले के बक मे ही नौकरी के लिए एप्लाई किया और छोटे बडे सोर्स भिडाकर बैंक म कलर्की पा ही ली घर स तीन चार फर्लाग पर ही बैंक था—दिन भर का नही, सुबह आठ से दस और शाम को चार से छह का, बस। बाकी वक्त फ्री था, उसका अपना था। वह स्वय भी बिलकुल 'अपनी' थी। एक बात उसम और अच्छी थी। वह लडका से दूर रहती थी। इस कारण कभी और कोई काण्ड नही हुआ था। हा, एकाध बार किसी लडके के छेडने पर उसन सीधे चप्पल उतारकर जड दी थी। मुहल्ले के युवक उससे कतराते। भाई निश्चिन्त रहत कि और कुछ भी हो, रजना उनकी नाक नही कटाएगी।

पहला वेतन मिलते ही उसने ढाई सौ मे स सौ बडी भाभी के सामन फेंक दिए, "अब तुम्हारे टुकडे नही खाऊगी। ये रह सौ रुपये मेर घर म रहने और खान-पीने का खच। ज्यादा ही दिए है, कम नहीं। मेरे खाने-पीने पर इससे ज्यादा खच नहीं आएगा धीरे धीरे अब तक का सारा एहसान चुका दूगी।" बडी भाभी रो पडी, "तुम एहसान चुकाओगी लली, मेरी ममता का ? चुकाकर देखो।"

रजना व्यग्य से हस पडी, 'मुझे आसू-वासू से कुछ नहीं होना! रोना है, तो रोओ। बात ममता वमता की नहीं, सीधे-सीधे हिसाब

की है। सुमन, भैया ने मुझपर जो खर्च किया है लौटा दूंगी बस मैंने कहा न किसीका एहसान मानना मेरे वस की बात नहीं है।"

रजना बढ़िया मेकअप कर, खूबसूरती से साडी की चुन्नटें और आंचल झुलाती, नपे तुले कदम रखती बैंक आती जाती। शाम को अक्सर सहेलियों के साथ घूमने घामने चली जाती, पर आठ से पहले ही लौट आती। सिनेमा का मार्निंग या मैटनी शो ही देखती। रात को कभी देर तक घर से बाहर न रहती।

फिर रजना को याद नहीं पड़ता, कब, कैसे, क्यों, वह महानगरी की भीड़भाड़ से दूर समुद्र तट पर जाने लगी और वह भी किसी के साथ नहीं, अकेली। कब कैसे, क्या सागर के अंतहीन प्रसार को वह घंटों निहारने लगी। लहरों से जाने क्या कहने सुनने लगी। बालू पर रेखाएं खींचती सांझ को समुद्र की बाहों में समाती देखती रजना के वक्ष में कुछ जाग सा उठा था। उस 'कुछ' का अहसास धीरे धीरे प्रबल होता गया। अनचाहे भी चाहने लगी कि उसके साथ कोई और भी हो। रजना के लिए 'कोई और' की तलाश भी मुश्किल नहीं थी। वह सुन्दरी न सही, आकर्षक अवश्य थी। खासी पढ़ी लिखी थी। भले घर की थी। कमाऊ थी।

हेमन्त उसके सबसे छोटे अनव्याहे भाई का मित्र था। भाई हेमन्त की बहन से प्यार करने लगा था। हेमन्त को उसकी बहन और अपने छोटे भाई के साथ रजना ने कई बार देखा और पाया कि हेमन्त उसे उन्हीं निगाहों से देखता है जैसे छोटा भैया हेमन्त की बहन को देखा करते हैं।

रजना की कुछ समझ में आया कुछ नहीं आया, लेकिन जब बड़े भैया ने उनके लिए हेमन्त को 'प्रपोज़' किया, तो वह बिलकुल मान गई। एक मंडप में दो विवाह एक साथ हुए। हेमन्त की बहन उसके घर आ गई वह हेमन्त के घर चली गई, हेमन्त के दो कमरोंवाले फ्लैट में। रजना की केवल दो शर्तें थीं, वह सास-ननद, किसीके साथ नहीं रहेगी, न नौकरी छोड़ेगी। हेमन्त को उसकी दोनों शर्तें मंजूर थीं।

सुहागरात की रात भी रजना सयत थी। घंटों मेकअप करती रही

थी, बार बार साडी सभालती रही थी और जब हमन्त ने उसकी ओर नशीली आखो से देखा, तो उसने स्वय स्विच ऑफ कर दिया था ।

हमन्त को रजना कुछ अजीब सी तो लगती, पर वह तुष्ट था । रजना बेड-टी से लेकर रात का खाना तक व्यवस्थित ढग से प्रस्तुत कर देती मोहक शृगार किए, सुहाग सेज पर उसे तैयार मिलती, "हा, बच्चे अभी नही कतई नही ' रजना की तीसरी शर्त थी ।

अब रजना सौ नही, पचास रुपये प्रति मास भाई भाभी को देती, अहसान चुका रही हू " एक चिट पर लिखा होता ।

हमन्त की आय निश्चित नही थी । वह इन्श्योरेन्स एजेण्ट था, कभी ज्यादा, कभी कम । लेकिन रजना उससे गिनकर तीन सौ रुपये प्रति मास रखवा लेती । हेमन्त घर क्या भेजता है कितना बचाता है वह एक एक रुपये का हिसाब पूछती । तीन बहनो के विवाह हो चुके थे । अकेली विधवा मा गाव म थी । "उनके लिए सौ रुपये काफी हैं " वह सख्ती से कहती, "बाकी एक मकान का किराया भी तो उनको मिलता है, काफी है, ठीक है । '

रजना व्यावहारिक थी, बचाकर खच करती थी । हमन्त को भी शिकायत नही थी । आरामदेह जिन्दगी की उनकी आशाए, कल्पनाए एक जैसी थी, बिलकुल ठोस, भौतिक । पाच सौ म दो प्राणियो का खच आसानी से चल जाता वैसे, धीरे धीरे रजना का वेतन बढने लगा था । वह कुछ टयूशन्स भी करने लगी थी ।

दो कमरो का पाशन, पुरानी बस्ती म होने के कारण सस्ता पडता था । नये मुहल्ला म किराए चौगुने थे । रजना धीरे धीरे उसी पुराने की कायापलट करने लगी । दीवारो पर डिसटेम्पर करवाया, परदे लगाए, बेंत का सोफा सेट सजाया, उसपर कुशन भी सजाए, इन्सटालमेन्ट पर सीलिंग फैन खरीदा धीरे धीरे फ्रिज और स्कूटर की भी योजना थी । हेमन्त को उसने 'नाटिस' द दिया था कि वह भी बसकर मेहनत करे जिन्दगी को आरामदेह बनाने के लिए रुपया बहुत जरूरी है ।

जैसे दिन रात अपनी लीक पर चलते, रजना और हमन्त की

कलाई घड़िया चलती, वे भी अपनी अपनी परिधि म सुनिश्चित चक्र मे घूमने लगे थे। एक चक्र, एक क्रम एक सुनिश्चितता रजना और हेमन्त के बीच निश्चित समझौता था।

• हेमन्त के यार-दोस्त फब्तिया कसते, "यार ये तेरी बीवी भी अजीब औरत है ! औरत है ता !"

हेमन्त भी हस पडता, 'नही यार, पूरी औरत है, लेकिन है अजीब ! समझ म नही आता, किस मिट्टी की बनी है ! देखो, शादी को दो साल होने आए और हम दानो मे कभी झगडा ही नही हुआ !"

श्रीधर न रिमार्क कसा "सो नो लव इज लास्ट बिटवीन यू—तुम दोनो के बीच प्रेम खोया नही है, यानी कि खोती वही चीज है न जो पाई होती है मतलब कि बस तुम दोनो मिया बीवी हो, एक छत के नीचे रहते हो, एक बिस्तर पर सोते हो और बस!"

हेमन्त सहसा गम्भीर हो गया, 'हा यार, रजना के इर्द गिर्द सब कुछ इतना नपा तुला गिना गिनाया निश्चित व्यवस्थित रहता है कि कभी शिकायत तक का मौका नही आता झगडना तो दूर की चीज है ! न कभी चाय म देर होती है, न कभी खाने मे नमक कम या ज्यादा होता है, न कभी वह देर से घर लौटती है !'

विनोद ने धीरे से पूछा, और सक्स ? इज़ शी सटिस्फाई यू ?"

हेमन्त और गम्भीर हो उठा 'शी इज़ परफेक्टली ! हा, मैं यह नही कह सकता कि वह मुझसे असन्तुष्ट है, या नही बच्चे वह चाहती नही तबियत खराब होती है तो भी मुझसे पास बठने को नही कहती सोचता हू कि मैं ही इतना बीमार पड जाऊ कि उसमे पास बठने के लिए कह सकू लेकिन, प्रश्न है कि तब भी वह पास बैठेगी, या अस्पताल म भरती करवा देगी ?

"रियली स्ट्रेंज ! सब कुछ इतना ठीक है कि बेठीक होने को जी चाहता है !' हेमन्त न एक दीर्घ नि श्वास लेते बात स[illegible] ।

दो वर्षों म रजना ने [illegible] [illegible] लिया कि आई। फ्रिज म पहले [illegible] जमाई। हे[illegible] कप मेज पर रखती थी [illegible]

'आसू पाछना तो तब आता है, जब रोना आता हो ! पता नही, भगवान ने तुम्ह दिल नाम की चीज दी भी है, या नही !"

'चलो, उसे भी आज डाक्टर से चेक करवा लेंगे ! मैं ता समझती हू मेरे पास दिल है, दिमाग भी, देह भी वरना मैं जिन्दा कैसे हू? सास लेती हू, काम करती हू, खाती पीती हू सब कुछ तो नामल है ! तुम्ही एबनामल हा उठे हो ! चेकअप मेरे दिल का नही, तुम्हारे दिमाग का होना चाहिए। वैसे भी, आजकल मेन्टल डिरजमन्ट के केसेज बहुत होने लगे है अखबार म न्यूज थी कि अमेरिका म सवन्टी परसेन्ट लोग जेब मे ट्रैंक्विलाइजस रखते है हेमन्त क्या हम लाग भी अमरिका नही चल सकते ? ग्रेट आइडिया ! हम भी अमेरिका चलेंगे, जरूर चलेगे !" रजना कोई ट्यून गुनगुनाती उठ खडी हुई।

"अखबारो मे यह भी तो न्यूज है कि अमेरिका म आत्महत्याओ की सख्या बढती जा रही है वह तुमने नही देखी ?" हेमन्त आख म आग और पानी साथ लिए रजना को घूर रहा था।

देखी थी, वह भी न्यूज देखी थी लिखा था, सत्तर प्रतिशत नींद या नशे की गोलिया खाते है बाकी तीस प्रतिशत आत्महत्या की स्थिति म जीत है या मर जाते है लेकिन डथ इज ए मस्ट म मरने-करने के बारे म सोचती ही नही!" रजना सडिल पहनने लगी थी, 'अब चलो तैयार हा जाओ !'

हेमन्त झटके स उठा। बुशशट पहनी, लुगी उतारकर पट चढाया, जुते के फीते कसते फिर चीखा, "चलो !हो गया तयार ! मरने के बारे म तो वो साचेगा जा जिन्दा हो तुम क्या, सोचागी ? सोच सकती ही नही ! तुमने तो सारी जिन्दगी को एक मथमटिकल कैलक्युलेशन बनाकर रख दिया ! तुम्हारे साथ ता जीना मुश्किल हो गया है !"

"तो साथ छोड दो ! आई वोन्ट स्टाप यू ! मेरी तरफ से तुम इस क्षण स आजाद हो !" रजना की दृष्टि, स्वर सब ठडा था।

'कमबख्त बिलकुल आइसक्रीम है ! आइसक्रीम कभी कभी खाई जा सकती है प्रति दिन का खाना तो नही बन सकती, जा जीवन

ना 7

रजना ने हेमन्त के गले म बाहू डाल दी, "नही, तुम मुझे डूबने नही देते ! मेरे साथ तुम भी डूब जाते। माफ करना, हेमन्त, पहली बार मौत के कगार पर आकर मैंने जिन्दगी की कीमत समझी है पहली बार तुम्हें पहचाना है !" रजना शायद जीवन म पहली बार फूट फूट कर रोने लगी थी ।

'मुझे नही, अपने आपको पहचाना है तुमने रजी ! शायद अब हम ठीक से जी सकेंगे ! जिन्दगी के लफ्ज को ही नही, मायने को भी जी सकेंगे जीवन के अथ को पा सकेंगे ! अब तो अमेरिका नही चलोगी न ?"

'न, अब अमेरिका नही अब तो जल्दी स जल्दी एक नन्हा हेमन्त चाहिए !" रजना के आसुओ से नहाए कपोलो पर गुलाल बिखर गया ।

आज की रात ही ले लेना !' हेमन्त ने रजना के होठो पर अपने होठ रख दिए जीवन की चेतना स स्पन्दित उष्ण होठ । कगार पर लहरें टक्कर मारने लगी थीं चाद उठने लगा था पूर्णिमा की रात भीगने लगी थी सागर म ज्वार उठ आया था और जब रजना और हेमन्त काफी देर बाद आलिंगन मुक्त होकर उठे, तो कगार पर लगी डजर की लाल तख्ती लहरो के ज्वार म डूब चुकी थी ।

बस में हेमन्त से सटकर बैठती रजना ने धीरे से कहा, "और सुनो हम माजी को गाव से बुला लेंगे सर्विस तो मैं छोड़ूगी नही, फिर बेबी को कौन सभालेगा ?"

हेमन्त उसके कान पर झुका, 'यह क्यो नही कहती कि अब बच्चे के साथ तुम्हें मा भी चाहिए क्यो ?" रजना ने कोई खूबसूरत चोरी पकडी जाती देखकर झेंपने वाली नजरें झुका ली । हेमन्त से और सट गई । बस के हिचकोले उन्हें और सटाए दे रहे थ ।

सुख

रात जबसे राजा बाबू को सपने में देखा, बुट्टो बुआ का मन कटी पतंग सा डोल रहा है। पतंग तो जाने कब की कट चुकी। फिर यह चरन हवा क्या इसे इस छोर से उस छोर तक ठोकर मार रही है! बुट्टो बुआ ने एक ठंडी सांस खींची। जीर्ण आंचल से पसीने से भीगे चेहरे को पोछा और कातर दृष्टि से आकाश को देखने लगी।

कटी पतंगों के आभास बुट्टो बुआ की कातर आंखों में हैं। आकाश में तो एक भी पतंग नहीं। बैसाख की दुपहर के इस चिलचिलाते आकाश में कोई पखेरू भी नहीं। केवल है इस छोर से उस छोर तक आग बरसाती धूप, इतनी कड़ी कि खोपड़ी चिटक जाए। ऐसी ही कड़ी धूप सारे जीवन बुट्टो बुआ के भीतर बाहर चिलचिलाती रही है और उसका तन मन चिटकता रहा है। बुट्टो बुआ को लगता है इन क्षणों धूप को झेलती धरती की आंखें वैसी ही कातर हैं जैसी बुट्टो बुआ की रही आई हैं।

सूने, आग बरसाते आकाश में बुट्टो बुआ की आंखें किसी कटी पतंग को देखने लगती हैं। कहीं कोई पतंग नहीं लेकिन बुआ को लगता है इस जलते आकाश में कोई कटी पतंग डोल रही है ... डोल रही है ! पतंग के दिन आते हैं तो बुआ बौखला जाती है। कोठरी बन्द कर बैठ जाती है। फिर बैठा भी नहीं जाता तो निकल कर उन छोकरों को कोसने लगती है जो बांस उठाए कटी पतंग लूटने दौड़ते होते हैं 'अरे मुओ, काहे परान दे रहे हो इन पतंगन के पीछे?'

कोई ढीठ लड़का और चिढ़ाता है 'तुम्हारा क्या जाता है बुआ।'

अरे, जाता काहे नाहीं है ... जाता काहे नाहीं है ... हुंह, बुआ आगी में से एक दो आग निकालती है, उसी ढीठ लड़के को पकड़ा देती है,

ले नई पतग खरीद लीजिआ। इस पतग का पीछा छाड।'

लडका का झुड हसता, शार मचाता दौड जाता है। फिर व उस दिन उस आर नही जाते। वैसे भी बुआ का घर दस्ती से हटकर एका त म है, एसे एका त मे जहा साधारणतया कोई रहने को तैयार न हो। पहले लागो ने डराया भी था, 'अरे! वहा तो भूत रहत है।' 'ता हम कौन चुडैल से कम है, भूत हम का डरावैंगे' बुआ ने जोर से कहा था यद्यपि वसा कहत उसका कलेजा भी काप गया था। अपन कापत कलेजे को बुआ न स्वय ही थाम लिया था और उस कोठरी मे रहन लगी थी जो लालाजी ने उसे मुफ्त ही रहन का दे दी थी। बदले मे बट्टो बुआ उनके घर के अनेक काम कर दिया करती। उस कोठरी म रहते बुआ को लगता जैसे वह सच ही कोइ चुडल हो। उस स्वय से भी भय लगने लगता। लेकिन कही कोई भी तो नही था उसके आसपास जिसे वह अपना भय दिखाती। वह भय उसकी ही पसलियो म कापता कापता नामाश हो जाता।

बट्टो बुआ मुगौडी पापड की पोटलिया पटकक र धम से नीम के पड के नीचे बठ जाती है। नीम का यह सघन गाछ वर्षों से तपती दुपहरो म बआ को ठडी छाह देता रहा है। बट्टो बुआ जब-तब नीम के तने से माथा छुआती है, हे निमुआ देव! तुम बने रहना, नाहो तो इम अभागिन बट्टो को कोइ पल भर छाह भी नही देगा।' बट्टो जब पहले-पहल इस कस्बे मे आई थी तो गिरती पडती इसी नीम के तले पहुचकर अचेत हो गई थी। चेत आया तो देखा था, केवल नीम की ठडी छाह उम घेरे है और दूर दूर तक धूप ही धूप है। नीम के इस पेड को बुआ अपनी लपन का साक्षी भी मानती है, अपना रक्षक भी। हर साल जब चत मे नीम फिर से फूलता है, नन्हे नन्हे सफेद फूलो से भर उठता है, नई कामल पत्तियो मे ल-जाता है, तो बुआ मगन हो जाती है! नीम की परिक्रमा करती है, उन सफेद फूलो से आचल भर लेती है, उन कोमल हरी-हरी पत्तियो को अपलक देखती है। हर साल नीम का गाछ ही नही हरिआता, जस बट्टो के बजर मन की काई आस हरी हो जाती है।

'चल मम्मन,गिलास भर, देखू गिलास भरना भी आता है या नहीं।'

बुट्टो गिलास भरने लगी थी कि गिलास हाथ से छूट गया था। खनखनाकर टूटते गिलास के साथ राजा बाबू के हाथ का एक भरपूर थप्पड़ बुट्टो के जामुआस भीगते गाल पर पड़ा। बुट्टो गिरी, अचेत हो गई। सवेरे जब चेत आया तो बुट्टो जाने कितनी देर समझ नहीं सकी कि वह कहा है और क्या हुआ है ? साड़ी पलग पर पड़ी थी, वह स्वय फर्श पर। पटीकाट पर लगा रक्त सूख गया था और बुट्टो का अग अग दर्द से टूट रहा था। अगो की टूटन से अधिक बाई और टटन थी जिसे पहली बार महसूस करती बुट्टो देर तक निशब्द रोती रही थी।

राजा बाबू के दिन सट्टे मे बीतते, रातें घुघरुओ की झकार मे। राजा बाबू को बुट्टो की ओर देखने की फुरसत नहीं थी।

उस रात के बाद बुट्टो के अबाध मन मे इतनी बुद्धि आ गई कि वह अपनी स्थिति को स्वीकार कर ले। राजा बाबू के परों मे घिसटती चप्पल-सी अपनी स्थिति को। उन परों मे वह पूरे आठ वर्ष घिसटती रही, जब तक कि एक रात सट्टे मे अपना सब कुछ हार कर नीलाम पर चढ़ी कोठी को छोड़, एक अधेरी रात मे राजा बाबू जाने किस अधेरे मे समा गए।

दरिद्र माता पिता पहले ही हैजे मे मर चुके थे। जब वे थे तो बुट्टो उनसे लिपटकर रो चुकी थी कि वह राजा बाबू के पास नहीं जाएगी। किन्तु मा और पिता दोनों ने आखे तरेरकर एक ही बात कही थी, 'नहीं बेटी, अब तो वही तेरा घर है और राजा बाबू तेरे स्वामी।' और सीता सावित्री के देश की बुट्टो सिसककर रह गई थी।

बुट्टो ने यह भी समझ लिया था कि दरिद्र माता पिता ने बड़ी मुश्किल से तो बुट्टो का बोझ उतारा था, अब वे उस बोझ को वापस क्या लेते ? बुट्टो को सदा लगता रहा जैसे वह एक बोझ है।

नीलाम हो चुकी कोठी से निकलकर सड़क पर खड़ी बुट्टो की आखों मे आसू भी नहीं बचे थे। फिर जाने कैसे वह उस शहर से इस कस्बे मे आ गई। मुगौड़ी पापड़ बनाती-बेचती बस गई। रहे

गो ई भुतही कोठरी, हाड तोडे को ई पत्थर की सिल, और का चाही बट्टा तुयें, और का चाही ' बुट्टो बुआ निमम होकर स्वय से यह प्रश्न पूछा करती ।

'कित्ते बरस बीत गए हे राम !' नीम की छाह मे बैठी बुट्टो बुआ उन बरसो का हिसाब लगाने लगती है तो सारी जिन्दगी एक अथाह रेगिस्तान सी उसकी धुधली आखा म फनकर रह जाती है । जलती धरती, तपता आकाश न आकाश की आखा मे कोई मेघ का टुकडा, न धरती के आचल मे कोई फूल । बुट्टो बुआ तो अपना नाम भी लिखना नही जानती, फिर कैसे बताए कि उस लम्बी जिन्दगी के लम्बे लम्बे दिन-रात उसने कैसे कट कटकर काटे है, एक अथाह रगिस्तान मे वह कैसे भटकती रही है, एक वैरन जिन्दगी को उसने कैसे मर मर कर जिया है ।

मुगौडी के लिए दाल पीसती बुट्टो बुआ अपने विधाता से पूछा करती है 'काहे जनम दिया विधाता इस बुट्टो को दाल पीसने के लिए, पापड बलने के लिए ? कौन सा दिन आवगा जब यह ढाई मन की लहास अर्थी पर उठैगी हे राम ! कब आवगा वो दिन, का घडी ।' दाल पीसते बुट्टो बुआ के हाथ पत्थर की उस सिल से भी अधिक पत्थर होने लगते है ! पसलियो के भीतर से एक चीत्कार फूटता है ! लेकिन कोई भी तो नही है आसपास जिसे वह ये पत्थर हुए हाथ दिखाए, या यह चीत्कार सुनाए । हाथ फिर दाल पीसने लगते हैं, चीत्कार स्वय खामोश हो जाता है । बस बुट्टो बुआ को देर-देर तक लगता रहता है कि वह जिन्दा नही है, केवल ढाई मन की एक 'लहास' ढो रही है ।

बुट्टो बुआ को अपनी भारी देह पर बहुत गुस्सा आता है 'ढाई मन की लहास है कमबखत अर्थी उठैगी तो भी आठ आदमी उठावग । क्यो न, वच्च के नाम पर तो इस निगोडी कोख न एक पिल्ला भी न जना, ये मेरी छातिया वैसे ही मेर-मेर भर की हो गइ पूरा गज भर कपडा चाहिए इन्ह ढक का ।'

लेकिन दपण म अपने मुख का देखती बुट्टो बुआ अब भी तरस

'चल कम्बख्त,गिलास भर, देखूं गिलास भरना भी आता है या नहीं ।'

बुट्टो गिलास भरने लगी थी कि गिलास हाथ से छूट गया था । खनखनाकर टूटते गिलास के साथ राजा बाबू के हाथ का एक भरपूर थप्पड़ बुट्टो के आंसुओं से भीगते गाल पर पड़ा । बुट्टो गिरी, अचेत हो गई । सवेरे जब चेत आया तो बुट्टो जाने कितनी देर समझ नहीं सकी कि वह कहां है और क्या हुआ है ? साड़ी पलंग पर पड़ी थी, वह स्वयं फर्श पर । पटीकोट पर लगा रक्त सूख गया था और बुट्टो का अंग अंग दर्द से टूट रहा था । अंगों की टूटन से अधिक कोई और टूटन थी जिसे पहली बार महसूस करती बुट्टो देर तक निःशब्द रोती रही थी ।

राजा बाबू के दिन सट्टे में बीतते रातें घुंघरुओं की झनकार में । राजा बाबू को बुट्टो की ओर देखने की फुरसत नहीं थी ।

उस रात के बाद बुट्टो के अबोध मन को इतनी बुद्धि आ गई कि वह अपनी स्थिति को स्वीकार कर ले । राजा बाबू के पैरों में घिसटती चप्पल-सी अपनी स्थिति को । उन पैरों में वह पूरे आठ वर्ष घिसटती रही जब तक कि एक रात सट्टे में अपना सब कुछ हार कर नीलाम पर चढ़ी कोठी को छोड़ एक अंधेरी रात में राजा बाबू जाने किस अंधेरे में समा गए ।

दरिद्र माता-पिता पहले ही हैजे से मर चुके थे । जब वे थे तो बुट्टो उनसे लिपटकर रो चुकी थी कि वह राजा बाबू के पास नहीं जाएगी । किन्तु मां और पिता दोनों ने आंखें तरेरकर एक ही बात कही थी, 'नहीं बेटी, अब तो वही तेरा घर है और राजा बाबू तेरे स्वामी ।' और सीता-सावित्री के देश की बुट्टो सिसककर रह गई थी ।

बुट्टो ने यह भी समझ लिया था कि दरिद्र माता पिता ने बड़ी मुश्किल से तो बुट्टो का बोझ उतारा था, अब वे उस बोझ को वापस क्या लेते ? बुट्टो को सदा लगता रहा जैसे वह एक बोझ है ।

नीलाम हो चुकी कोठी से निकलकर सड़क पर खड़ी बुट्टो की आंखों में आंसू भी नहीं बचे थे । फिर जाने कैसे वह उस शहर से इस कस्बे में आ गई । मुंगौड़ी पापड़ बनाती-बेचती बस गई । 'रहै

की ई भुतही काठरी, हाड़ तोड़े की ई पत्थर की सिल, और का चाही बुट्टो तुझे और का चाही ' बुट्टा बुआ निमम होकर स्वय से यह प्रश्न पूछा करती ।

'कित्ते बरस बीत गए हे राम !' नीम की छाह मे बैठी बुट्टो बुआ उन बरसो का हिसाब लगाने लगती है तो सारी जिन्दगी एक अथाह रेगिस्तान सी उनकी धुधली आखो म फनकर रह जाती है । जलती धरती, तपता आकाश न आकाश की आखो मे कोई मेघ का टुकडा, न धरती के आचल म कोई फूल । बुट्टो बुआ तो अपना नाम भी लिखना नही जानती फिर कैसे बताए कि उस लम्बी जिन्दगी के लम्बे लम्बे दिन-रात उसने कैसे कट कटकर काटे हैं एक अथाह रेगिस्तान म वह कसे भटकती रही है, एक बैरन जिन्दगी को उसन कैसे मर मर कर जिया है ।

मुगौडी के लिए दाल पीसती बुट्टो बुआ अपने विधाता स पूछा करती है 'काहे जनम दिया विधाता इस बुट्टो को, दाल पीसने के लिए, पापड बलने के लिए ? कौन सा दिन आवैगा जब यह ढाई मन की लहास अर्थी पर उठैगी हे राम ! कब आवगा वो दिन, वो घडी ।' दाल पीसते बुट्टो बुआ के हाथ पत्थर की उस सिल से भी अधिक पत्थर होने लगते हैं ! पसलियो के भीतर से एक चीत्कार फूटता है ! लेकिन कोई भी ता नही है आसपास जिसे वह ये पत्थर हात हाथ दिखाए, या यह चीत्कार सुनाए । हाथ फिर दाल पीसने लगते हैं, चीत्कार स्वय खामोश हो जाता है । बस बुट्टो बुआ को देर देर तक लगता रहता है कि वह जि दा नही है, केवल ढाई मन की एक 'लहास' ढो रही है ।

बुट्टा बुआ को अपनी भारी देह पर बहुत गुस्सा आता है, 'ढाई मन की लहास है कमबखत अर्थी उठैगी तो भी आठ आदमी उठाएगे । देखो न, बच्चे के नाम पर तो इस निगोडी कोख ने एक पिल्ला भी न जना ये मेरी छातिया वैसे ही सेर-सेर भर की हो गइ पूरा गज भर कपडा चाहिए इन्हें ढक का ।'

लेकिन दपण मे अपने मुख का देखती बुट्टा बुआ अब भी तरल

होने लगती है। याद आता है—ऐसी बुरी तो वह नहीं थी। वह गोरी नहीं थी, लेकिन सावली-सलोनी तो थी। बूटा सा कद, सुघट हाथ पाव और जगमग बत्तीसी। ब्याह के पहले तेल हल्दी का उबटना करती मा ने कहा था मेरी बेटी को नजर लगेगी!' और सच म डिठौना लगा दिया था। फिर बुट्टो ने राजा बाबू से सुना था, वह कल्लो परी है, उसकी आखें नहीं मक्खियां हैं। और उन्हीं राजा बाबू ने एक दिन उसे ऐसा प्रबल धक्का दिया था कि वह चौखट पर गिरकर बेहोश हो गई थी। उस जगमग बत्तीसी के चार मोती टूट गए थे, नीचे का होठ कट गया था। उन दातों के टूटने के बाद राजा बाबू से जुड़ने की कोई आशा भी शेष नहीं रह गई थी। टूटे दात और कटे होठ ने बुट्टो को सचमुच कुरूप बना दिया था।

अब तो बुट्टो बुआ पचास लाघ गई है। आधे से अधिक दात टूट-टाट गए हैं। आधे से अधिक बाल पक गए है। गाल लटक आए हैं। आखो म मल आता रहता है। उन्ही मली आखो को झपकाती, दतविहीन मुख से बुट्टो आशीर्वाद बिखेरती रहती है। वह मा की भी बुआ है, बेटी की भी। वह तो पुरुषों को 'भैया जी' या 'काका जी' कह भी लेती है लेकिन बदले म उसे सब बुट्टो बुआ ही कहते हैं। और मोटापा है कि बुट्टो की जजरता को ढाई मन की लाश बना गया है, 'हे राम कब उठेगी य लहास ।' रात म करवटें बदलती बुट्टो कराहती होती है।

'इन तीस बरसन मे जमाना कितना बदल गया,' बुट्टो बुआ कपाल पर हाथ लगाकर सोचती है 'सुना अब तो मनई मेहरारू झगड तो मेहरारू को भी हक्क है अलग हो जाव का, दूसर बियाह रचाव का राम राम आदमी जो चाहै कर, लेकिन तिरिया का तो ई धरम नाही कि एक का छोड दूसर का हाथ पकड ।'

बुट्टो बुआ अपने धर्म के आभास मे डूबने लगती है। बाहर का अधेरा वैसा ही रहता है, लेकिन भीतर कही भोर का सा उजास फूट आता है। उस उजास मे डूबती बुट्टो ऐसी तन्मय हो उठती है जैसे मदिर वाले सूरदास से याझ पर कीर्तन सुनकर होती है! बुट्टो के होठ

हरिनाम सा राजा बाबू का नाम रटन लगते है। मन मजीर बजाने लगता है। आर फिर सब कुछ चुप हो जाता है खो जाता है शेष रह जाता है केवल अधरा अधरा, बुट्टो को लील जाने वाला अधेरा।

आखो म आता मल पोछन के लिए बुट्टो बुआ आखा म आचल नगाती है ता लगता है आख फडक गई है। कौन-सी फडकी है बाइ? बाइ आख का फडकना तो शगुन होता है क्या शुभ होगा क्या शुभ हो सकता है? बुआ क मन म सहसा एक हुलास उठता है 'अगर सच्चई राजा बाबू आ जावें तो! बुआ का मन उमगने लगता है जसे बरसात मे सूखी पडी तलैया उमग आती है। जब जब एम आख फडकी है, बुट्टो बुआ उमग आई है 'अर, हमार ऐसे भाग कहा जो राजा बाबू लौट आव और लौट भी आवें तो अब ता उमिर का सूरज भी ढल गया, रात के अधेरे मे कौन किसे पहचानेगा चीन्हेगा!' बुट्टा बुआ का कलेजा टीसने लगता है हा अब तो उमिर का सूरज भी ढल गया राजा बाबू ने तो बुट्टा को तब भी नही चीन्हा था जब उमिर का भिनसार था बुट्टो अचीन्ही ही रह गई थी।

'अब राजा बाबू का भी कौन दोष बुट्टा के भाग ही खराब हैं। चा कहत हैं न, रूप की रोए भाग की खाए। जाने कौन से पाप किए थे बुट्टो न पिछने जनम म, जो नरक भोगती रह गई। सच्चई राजा बाबू का कौनो दोष नाही, बुट्टो ही जनमजली है।' मैली आखें झप जाती, राजा बाबू को क्षमादान देती, गिरी पडी बुट्टा उठ सी आती है। अनगिन दु खो के बीच कैसा सुख सा है इस क्षमादान मे! घुप्प अधेरे म बुट्टो कभी कभी इस सुख का टटाल लेती है।

'अच्छा हुआ जो राजा बाबू रहा सहा रूप बिगाड गए, नाही तो इज्जत बचानी मुसकिल हो जाती।' उन टूटे दातो, उस कटे होठ क लिए बुट्टा राजा बाबू की कृतज्ञ होने लगती है। राजा बाबू कदर करें न कर बुट्टा की देह राजा बाबू की अमानत है ई देह जूठी हा जाती तो बुट्टो कभी न जीती चाहे जमे परान त्याग दती।' बुट्टा पढी लिखी नहीं, धरम करम की बडी बडी बात नही जानती। कवल

इतना समझती है कि उसकी नारी देह के अछूत जनने मे जो अगर-बत्ती सी गमक है वह बहुमूल्य है प्राणों से भी अधिक मूल्यवान।

दुपहर चढ आई है। नीम की छांह भी गरम होने लगी है। सहसा हवा का एक थपेड़ा उठता है, रेत का बगूला उठ आता है। बुट्टो बुआ रेत के उस बगूले को देखकर आंखें मूंद लेती है। बगूला देखा नही जाता। हवा का थपडा बुट्टो बुआ को रेत से नहला जाता है। आंख, नाक किरकिराने लगी है। धूल और पसीने मे नहाई बुट्टो बुआ उठ खड़ी होती है 'चल री बुट्टो तेरे भाग म चन कहा! आज तो कुछ बिक्री भी नही हुई। चल एक चक्कर उधर का भी लगा ले। साइत कुछ बिक बिका जाए। आज तो घर म आटा भी नहीं है। मुट्ठी भर दाल चावल पड़े होंगे। न नमक है, न तल। आग लगे इस पापी पेट म इस तरह जिनगानी मे।' बुट्टो अपने को कोसती चलने लगती है। आंख नाक ही नहीं जी भी तो किरकिरा रहा है।

आखिर किस सुख के लिए जिन्दा है बुट्टो मर क्यों नही जाती? बुट्टो बुआ ने कई बार अपने जी से पूछा है। कई बार चाहा है कि पत्थर बाधकर किसी ताल तलैया म डूब मरे या रस्सी का फदा लगा ले या तेल छिड़ककर जल मरे। लेकिन बुट्टो बुआ म मरने का भी साहस नही है! मत्यु की सोचते बुट्टो बुआ डरने लगती है 'जाने मरने के बाद क्या हो अब इस जिनगानी मे जो कुछ भोगे का था भोग लिया जब जीते जी चैन नही मिला तो मरने के बाद ही मिलेगा कौन जाने?' तभी कही बुट्टो को लगता है कि उसके जीने-मरने म फर्क ही कहा है? वह तो जाने कब की मर चुकी है! जलते आकाश के नीचे, तपती धरती पर अपनी देह को घसीटते बुट्टो बुआ को लगता है, हा सच्चाई वह जिन्दा कहा है वह तो जाने कब की मर चुकी है। दुपहर का यह साय-साय करता सन्नाटा जैसे मौत का सन्नाटा है यह चारों ओर फैला अकेलापन जसे मत्यु का अकेलापन! शायद वह मृत्यु के बाद के ही बियाबान म अकेली भटक रही है और आसपास दूर दूर तक कोई नही है। बुट्टो बुआ की

सास भारी हो उठती है ठीक गर्म हवा के उस थपेड़े की तरह ।
बूआ के भीतर गुबार सा उठता है ठीक रेत के उन बगूलों की
तरह ।

निर्वसन

वह एक साधारण लडकी थी। इतनी साधारण कि उसे देखकर अनदेखा किया जा सकता था। वह भीड म खो सकती थी। और कोई एकान्त उसे पाकर ध्वनित हो उठे ऐसी भी वह कहा थी? साधारण नाक नक्श सावला रग और मुख पर कोई वैशिष्ट्य नही। बचपन म वह मुझे ऐसी ही लगती थी। क्लर्क पिता की तीसरी सन्तान। उसके पीछे तीन और थ। वह जसे अनचाहे जन्म गई थी। अभी वह अगूठा ही पीती थी कि वह अपन से छोटे भाई को गोद म टागन लगी। नुक्कड के हलवाई स जब तब दूध या मिठाई लाते मैंने उसे देखा था जब-तब पिटते भी। पिटकर आसू बहाती जब वह मले फ्राक से अपनी आखें पोछती तो मुझे उसपर बेहद करुणा आने लगती। कभी कभी मै उसे कुछ दे देता एक लेमनचूस या एकाध आना। तब वह आसू पोछना भूलकर मेरा हाथ पकड लेती। 'भया' कहती वह हसने लगती। उसका भया कहना मुझे अच्छा लगता था।

उसका नाम राधा था। भारत की मिट्टी में हर तीसरी लडकी का नाम राधा होता है। कृष्ण के साथ राधा का नाम हमारी सस्कृति के होठो पर गूजता रहा है। 'राधा कृष्ण का नाम हमारे मन्दिरो से घरो तक गूजा करता है न! राधा नाम कदाचित नारीत्व की उस चेतना का प्रतीक है जो प्रेम का प्रतीक थी। नारीत्व की चेतना और प्रेम और राधा मैंने कहा पढा है 'हर स्त्री म राधा होती है।

मैं उस लडकी के सम्बन्ध म नही, कभी कभी उसके नाम के सम्बन्ध मे सोचा करता था। राधा नाम के साथ क्या हमारी

संस्कृति, हमारा समाज, नारीत्व की उस चेतना को भी आत्मसात कर सका है, जिसे प्रेम चाहिए, जिसे स्वीकार चाहिए जिसे कृष्ण चाहिए। लेकिन कृष्ण तो एक ही राधा को मिले थे। और वे भी पूरे कहा मिले थे ? कृष्ण कई टुकड़ो मे बट गए थे। किन्तु राधा के पास अपनी सम्पूर्ण निष्ठा के अतिरिक्त कुछ भी तो नही था, जिसे वह बाटती। राधा उन्मादिनी होकर रह गई थी। क्यो हो उठती है नारी उन्मादिनी, जबकि पुरुष निर्ममता की हद तक सयत रहा आता है ? क्या पुरुष नारी से थोड़ा-सा उन्माद नही ले सकता कि फिर राधाओ को आत्मघात न करना पड़े ! यह भावुकता गलत चीज है—बुजुर्ग कहते हैं यदि मर्द भी औरत की तरह चूडिया पहन कर बैठ जाए, तो दुनिया कैसे चलेगी ?

'नही,' मैं कहता हू—मर्द को औरत की तरह चूडिया पहनकर *बैठने की जरूरत नही है केवल उन चूडिया भरे हाथो को जब-तब* मस्तक से छुआते भर रहने की जरूरत है। थोडी सी पूजा, थोड़ा सा उन्माद और बस दुनिया जन्नत हो उठेगी !

अरे चल, बैठे-बैठे उल्टी-सीधी बघारा करता है। जानता है, जो दुनिया की रीत नही मानते, उन्हे पागल कहते हैं। जरा ठहर जा कोई आ जाए तो तेरी सारी जन्नत निकाल देगी।' मेरी मा कहती थी। तभी तो मैंने अब तक शादी नही की, अट्ठाईस का होने आया। मा जमो की भीड मे मेरी 'जन्नत' का अर्थ कौन समझेगा ? शायद वह भी नही, जिसके चूडियो भरे हाथो को मैं माथे से लगाना चाहता हू। जाने क्या क्या सोचता रह गया हू मैं ?

राधा की मा जब उसे चीखकर बुलाती, 'अरी रधिया, करम-जली, कहा मर गई ?' तो मेरा जी चाहता, मैं भी चीखकर पूछू—'क्यो रखा इसका नाम 'राधा' ? करमजली ही रखती !' और अबोध आखो मे अनकहा दर्द लिए वह करमजली मा के सामने आ खड़ी होती।

मै राधा का पडोसी था। वह छ वर्ष की होगी तब मैं सोलह का था। एक दिन वह मेरा हाथ पकड़कर खीचने लगी, 'आओ

भया चार पुलिस खेले।' मुझे हसी आ गई 'चार कौन बनगा ?' 'तुम ' कहती वह दौडने लगी। उसकी अबोध आखो मे पल भर की खुशी देखने के लिए मैं चोर बन गया। वह दौडी ही थी कि देहरी से टकराकर गिर गई। एकदम मे चार दात टूट गए। खून की धारा बह निकली। रोने लगी थी। उसे लेमनचूस देकर चुप कराते म सोचने लगा था 'क्या गिर गई यह ! इसने जरा-सा तो खेलना चाहा था। सच क्या इसके नसीब म आसू ही है ?' उन क्षणो 'नसीब' शब्द मुझे इतना भयावह लगा कि मैं राधा की ओर भी नही देख पा रहा था। शायद एकाध आसू मेरी आखो म भी आ गया था। जिसे झुठलात मैं हसा था 'चूहेखानी ! पूरा का पूरा चूहा मुह मे रख लिया तो दात टूटेंगे ही।'

'जाओ भया, मै चूहेखानी नहा हू। कहा खाया मैंने चहा झूठ ! वह सकुचा गई थी। उसका वह अबाध सकाच मेरे भीतर एक आलोडन जगा गया था। यह दुबली पतली, सावली निरीह लडकी जि दगी से कैसे लडेगी ? इसके पास काई भी तो हथियार नही है। जसे जस राधा बडी होती गई, उस दूर से देखत मेरे भीतर का वह आलोडन प्रबलतर होता गया।

जाने कब राधा के टूटे दाता के स्थान पर मोती सी बत्तीसी जगमग करने लगी। उसके सारे मुख पर कवल उसके होठो के सपुट तराशे हुए थे। जान कब वे सपुट गुलाबी हो उठे। छोटी आखा को बडा करना तो प्रकृति के वश म भी नहीं था, किन्तु जान कस उन आखा मे इद्रधनुषी रग झलक उठे ? कहा से झलक उठत है य रग हर राधा की आखो मे ? शायद ये रग हर नन्ही गुडिया के भीतर साए पडे होत है और यौवन की दस्तक उन्ह जगा देती है। मुझे ता यौवन की हर दस्तक भी निर्दोष लगती है। फिर कौन दोषी हा उठता है—वह राधा, व दस्तकें या वह समाज जा शिकारी के समान घात लगाए बठा हर चौकडी भरती हिरनी पर तीर चला देता है ? दानवीय व्यवस्थाआ के जाल म जान कितनी हिरनिया फम जाती है छटपटाती हैं, दम तोड देती हैं। जरूर दिमाग खराब हो गया है

मेरा कि मुझे हर लड़की राधा लगती है। हर राधा हिरनी। और हर हिरनी की कान तक खिंची आंखों में मुझे एक कातर, आर्त्त पुकार दिखाई देती है, जीने की कामना की !

मैं बी० ए० पास करके दो साल से झक मार रहा था। वांटेड के कालम देख रहा था। एक दिन, वांटेड के कालम देखते समय उसने मुझे छुआ, 'देखो भैया कैसी लग रही हूं ?'

'अरे जैसी है वैसी ही लगेगी, पूरी चुड़ल जैसी।' मैंने बिना उसे देखे कहा।

'न, मुझे देखो, देखो न !' वह कातर सी हो उठी।

मैंने आंख उठाई, 'अरे, यह चुड़ल इतनी सुन्दर कब हो गई कैसे हो गई ?' मैं हंस पड़ा। सचमुच मेरे सामने वय:संधि की सीमा पर खड़ी राधा, मुग्धा नायिका-सी सौन्दर्यमयी हो उठी थी। सांवला रंग इतना मोहक हो आया था कि दृष्टि में लोभ जगा दे ! होंठों के तराशे सपुट गुलाबी हो उठे थे और उन छोटी आंखों में रंगों के विस्तार फैल गए थे ! यह वही चूहेखानी है, जो आज हंस रही है तो मोती जगमग कर रहे हैं ? मैं विभोर हो उठा—कब हो गया यह कायापलट ! अभी कल तक तो यह नाक बहाए घूमती थी।

मेरे मुंह से 'सुन्दर' सुनकर वह किंचित गर्व से भर उठी। ग्रीवा को एक सहज भंगिमा से झुकाकर बोली, 'वो तुमने राखीपूनो को दो रुपए दिए थे न, तो मैं मां से छुपाकर स्नो ले आई। रोज लगाती हूं। मेरी सब सहेलियां लगाती हैं, तो मेरा भी मन करता है। और अब तुम भी कह रहे हो न कि मैं सुन्दर हो गई।' उसने दृष्टि उठाकर मुझे देखा—निर्दोष, स्वच्छ, दर्पण-सी आंखें जिनमें जो कुछ होता, प्रतिबिम्बित हो उठता था।

मैंने देखा, वह सयत्न स्वयं को ढके थी। साड़ी का आंचल दोनों कंधों को ढके था और झूलती लटों में आमंत्रण नहीं, केवल एक क्रीड़ा थी। वह गुड़िया खेलना छोड़कर अपनी आंखों के रंग, अपनी झूलती लटों से खेलने लगी थी। सहसा चन्दा मौसी का कर्कश स्वर आया, 'अरी राधा, चल इधर आ।'

फिर मैंने सुना, चन्दा मौसी अपने ऊंचे स्वर को दबाकर कह रही थी, 'क्या दिखा रही थी उसे ? कोई सगा भाई है तेरा ?'

'सगा न होने से क्या होता है, उसे राखी जो बांधती हू ।' यह राधा का सहमता स्वर था।

'चल, बडी आई राखी बाधने वाली। अब जो उससे खुसर पुसर की तो जान ले लूगी।'

मैंने देखा राधा मुह म आचल ठूसे दौडती मां दूसरी कोठरी म चली गई है। मैंने यह भी देखा कुलाचे भरती हिरनी को पहला तीर लग गया था । उसकी आखें आहत हो उठी थीं।

मैंने एक ठडी सास ली। उठकर चला आया। म कुछ भी तो नही कर सकता था। राधा की वे अबोध आखें मुझे बार-बार याद आती, जिनमे कांच कोचकर बोध जगाया जा रहा था—पाप का।

राधा की मा चन्दा मौसी, और मेरी मा सहेलिया थीं। एक पुरान मुहल्ले म हम दोनो परिवारो के सटे घरो की छतें मिली थीं। एक छत से दूसरी छत पर मुडेर फादकर जाया जा सकता था। मेरे तो पिता नही थे किन्तु राधा के पिता को मैं मौसाजी कहता आया था। जब नेहाश आया मने राधा के परिवार को सहजता से निकट माना था। इसलिए 'कोई सगा भाई है तेरा मुझे भी आहत कर गया। किन्तु उन बातो से क्या फायदा कि पत्थर मारे जाने लगे ? मैं स्वय को और राधा को उन पत्थरो से बचाना चाहता था, जो समाज के ठेकेदार फेंकने लगते है।

जाडे की एक खुशनुमा गुलाबी सुबह थी। मैं अपनी उबड खाबड पत्थरो वाली छत पर बैठा किसी पुस्तक के पष्ठ पलट रहा था। मन निश्चय ही उन पष्ठो म नही था। मन तो उस गुलाबी गुनगुनी सुबह से कुछ ऊष्मा उधार लेना चाहता था कि मेरी शिराम्रो म जमा जाता रक्त, बहता रहे। मैं अभी भी 'वान्टेड' के कालम ही देख रहा था। बी० ए० तक की पढाई तो मा ने जस तसे पूरी करवा दी थी। अब घर म चूल्हा जलना बन्द होने की नौबत आ रही थी। अपने परिवार म हम मा बेटे दो ही थे, फिर भी मैं निखटटू साबित हुआ

जा रहा था । कुछ तो समय ही टेढ़ा था और कुछ मैं जीवन में कोई अर्थ ढूंढने की कोशिश कर रहा था । मा कहती, 'अरे भैय, जो काम मिलता है कर क्यों ले । कोई तुझे जवाहरलाल थोड़े ही बनना है । जवाहरलाल तो खैर मुझे नही बनना था न बन सकता था, किन्तु जीवन को दाल रोटी और बीवी बच्चे के अतिरिक्त कोई छोटा सा अर्थ और देना चाहता था । और इस अर्थ देने के चक्कर मे धीरे धीरे नालायक सिद्ध हुआ जा रहा था ।

मैं उस सुबह में ऊष्मा खोज रहा था । देखा, राधा और चन्दा मौसी धूप मे बडिया डालने अपनी छत पर आई हैं । मैंने पीठ घुमा ली । मैं राधा की उन आहत मृगी-सी आखो से बचना चाहता था ।

मा, एक बात कहू ? यह राधा की आवाज थी, मधुर और सरल,'जैसे वसन्त में कोई चिड़िया चहचहाता है । मेरी पीठ पर जडी आखें देख रही थी कि चन्दा मौसी ने तेज नजरो से राधा को देखा है, कहा कुछ नही है और राधा ने गरदन झुका ली है ।

मा, मैट्रिक तो मै कर चुकी । जानती हू अब आगे पढ़ना मुश्किल है । मा, मुझे नाच सीख लेने दो, मेरा बडा मन है । डालियो पर फुदकती चिडिया चहचहा रही थी ।

'तू नाच सीखेगी ! नाच क्या शरीफजादियो के काम है ?' चन्दा मौसी गरज उठी ।

क्या ? मीरा भी तो नाचती थी मा, 'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई ' अपने यहा टगे कलैंडर में मीराबाई नाच रही है न ।'

'भाड में गई मीरा अब तो नाचने वालिया कोठे पर नाचती हैं रडी बनेगी ?

'मा ' राधा का स्वर रुद्ध हो गया था ।

मेरी पीठ पर जडी आखें देख रही थी । चन्दा मौसी धम धम करती नीचे चली गई है । दाल से सना हाथ लिए राधा बैठी रह गई है वह भी तो उस गुलाबी सुबह में कोई ऊष्मा खोज रही थी कि जीवन को कोई अर्थ दे सके ।

सहसा मुझे लगा हो सकता है, कभी चन्दा मौसी भी राधा

जसी रही हो और मीरा बनना चाहती हो । और ज़माने न उनके घुघरू बधे पैरा पर इतन काडे मार हा कि व नाचना क्या, चलना भी भूल गई हा । आज चन्दा मौसी मीरा का भाड म झोक रही हैं और मीरा की बात करन वाली अपनी बटी को केवल रडी का अथ समया रही हैं । क्या क्या होता है ऐसा कि मीरा की बात करने वाली राधाए कोठो पर खडी हो जाती ह ?

मेरी पीठ पर जडी आखे देख रही थी राधा का रुद्ध स्वर सिसकियो म फूट पडा है म और नहीं सह सका । राधा जान कब तक बठी रही हागी मैं नीचे चला आया था । मेरे भीतर का आलाटन अपन किनारा पर टक्करे मारन लगा था भवर मे फसी राधा का निकालन का आवेश भी मन म आया था किन्तु लहरा स टक्कर लेन का साहस मुझम नहीं था ।

गर्मी की एक चादनी रात थी । तरतीबवार बने, पाश बगला वाले मुहल्ला म चादनी भी लाउज या टैरेस पर कायदे से उज्ज्वल होकर उतरती है । फिर उस चादनी म स्वीट पी' या रातरानी की खुशबू भी घुल जाती है । लेकिन मेरे मुहल्ल म ऊची नीची जीण छतो पर उतरती चादनी बेतरतीब और मलिन हा उठती थी । उस चादनी म काई खुशबू नहीं नालिया म उठती दुगन्ध घुलन लगती थी । और तब 'स्वीट पी की खुशबू की कल्पना करत मैं आखें मूद लेता था । फिर, सपना भरी नीद आ जाती थी ।

बहुत गर्मी थी उस रात । सारा वातावरण जसे एक भरपूर सास क लिए हाफ रहा था, एसी उमस भरी घुटन थी । मैंने दखा, बगल की छत पर कोई आया है—राधा थी ।

मन देखा, राधा कुछ क्षणा बुत बनी खडी उस चादनी का दखती रही फिर नाचन लगी । वहा कोई लय नहा थी, कोई धुन नहीं थी, कोई सगीत नहीं था, वह धीम स्वरा म मेरे ता गिरधर गोपाल दूसरा न कोई ' गाती राधा अपनी ही धुन अपनी ही लय, अपन ही सगीत पर नाच रही थी । भगिमाआ म मुडत हाथ और थिरकत पैर । मैंन देखा, राधा को घेरे वह मलिन चादनी भी धीरे धीर

नाचने लगी थी।

जी चाहा, मुंडेर फादकर जाऊं और राधा को आशीर्वाद दे आऊं कि वह नाच सके नाचती रहे, लेकिन मुंडेर फादने की निर्दोष क्रीड़ा समझी जाने की हमारी उम्र जा चुकी थी। अब मुंडेर फादना, चोर बनना था। उन क्षणों राधा केवल मीरा थी और मैं केवल उसे आशीर्वाद देना चाहता था। लेकिन मुंडेर फाद नहीं सका था।

मां ने बताया, राधा का रिश्ता आया है। मैं रोटी खा रहा था, कौर गले में फंस गया 'कहां से'?

'अरे, नुक्कड़ पर जो लाला है न उसके यहां से।' मां कुछ परेशान-सी लगी।

'लेकिन उसका बेटा तो अभी छोटा है।' मैंने फंसे कौर को पानी के घूंट से उतारकर कहा।

'रिश्ता लाला के खुद के लिए है।'

लाला के खुद के लिए? उस मोटे काले, घिनौने जानवर के लिए, जिसे आदमी कहना मुश्किल है। कौन नहीं जानता कि वह रात दिन डंडी मारता है, शराब पीता है और आधी रात गए किसी बदनाम गली से लौटता है। नहीं, मां ने गलत सुना होगा।

लेकिन मां ने ठीक ही सुना था।

राधा आर्त्तनाद कर रही थी, 'नहीं मां, मैं ब्याह नहीं करूंगी।'

'ब्याह नहीं करेगी तो क्या करेगी, बोल, कोठे पर बैठेगी?' चन्दा मौसी राधा को चांटे मार रही थी।

'मैं कुछ काम करूंगी और पढ़ूंगी तुम्हारे पास रहूंगी मां मुझे बचा लो'

'अरे, ब्याह तो हर लड़की को करना पड़ता है तुझे करना पड़ेगा कम्मी कैसे नहीं' चन्दा मौसी ने राधा को कोठरी में धकेलकर सांकल लगा दी थी। निरीह से दीखने वाले मौसाजी भी गुर्रा रहे थे, 'रहने दो बन्द चुड़ैल को, दिमाग ठिकाने आ जाएगा।' एक झिरी से यह सब देखता मैं खामोश था। हां, राधा की चोट के दाग मेरे भीतर भी साफ-साफ उभर आए थे।

चन्दा बताती नही है, लेकिन पाच हजार रुपया लिया है लाला से।' मा ने दबे स्वर म बताया था। फिर शहनाइया बजी, और फूलो से सजी टक्सी म बैठकर राधा लाला के घर चली गई। सुना, विदा के समय राधा बेहोश हो गई थी।

मैंने पत्रकारिता का धन्धा चुन लिया था और स्वय को पत्रकार कहने लगा। शहर के छोटे मोटे अखबारो म छपने लगा। म कोशिश कर रहा था कि उस क्षेत्र म कुछ एसा करू कि मरे धन्धे का कोई अथ मिले, मुझे भी। इस अथ के चक्कर मे सचमुच मैं उलझ गया था या अथ के किसी अदृश्य पाश से बध गया था। मा भी नही रही थी अब जीने के लिए मुझे बहुत कम चाहिए था। कम या ज्यादा किसी खुशबू किसी ऊष्मा, किसी अथ के लिए मैं पागल हो उठा था! प्राय ध्यान आता, राधा भी तो ऐसे ही पागल हो उठी थी।

राखी पूर्णिमा थी। राधा आई हुई थी। मेरी कलाई पर राखी बाधती राधा बहुत उदास, बहुत पीली थी। म देख रहा था राधा का अग प्रत्यग राधा का मन राधा की आत्मा, राधा का हर अणु क्षतविक्षत है। इतने तीर बरसे थे कि राधा का राम राम बिध चुका था। लेकिन मैंने साफ-साफ देखा, आहत मगी सी राधा की उन आखो म जीने की कामना उद्दाम हो उठी थी। मुख पीला पड गया था, लेकिन आखो म चिनगारिया भडकने लगी थी। वह एसी शान्त थी जैसे तूफान के पहले प्रकृति होती है।

'कैसी हो?' मैंने हसकर पूछा।

'सती हो रही हू।' राधा ने होठ काटे। वह एकटक मुझे देख रही थी।

'अरे सती तो पति के बाद हुआ जाता है भगवान ना करे लाला कुशल से तो हैं?' म राधा के उन्माद को समझ रहा था।

'सती हो रही हू, यानी कि सती बनने की कोशिश कर रही हू। सीता सावित्री के देश की हू न। लगा साडी का आचल उमेठती राधा जसे उस साडी को फाड देना चाह रही थी। होठ काटती

किसी तूफान के वेग को झेलती, जलती आखा वाली राधा मेरे सम्मुख उन्मादिनी सी खडी थी।

'राधा भाग गई राधा भाग गई दोनो कुलो को दाग लगा गई अरे,वो तो हम पहले ही जानते थे कि छोकरी के लक्षण अच्छे नही हैं ' मुहल्ले म शोर मच गया था। चन्दा मौसी आसू बहाती राधा को कोस रही थी, मरी कुलच्छनी, पैदा होते ही क्या न मर गई।' और लाला ने बीच गली म खडे होकर राधा के पिताजी को हजार गालिया दी थी।

'राधा भाग गई कहा चली गई होगी ? शायद आत्मघात कर लिया हो ।' पूरे दो वर्ष गुलाबी सवेरो और चादनी रातो म राधा मुझे बेतरह याद आती रही। गुलाबी सवेर से जीवन की ऊष्मा की याचना करती राधा । चादनी रात मे किसी भीतर की धुन पर नाचती, जीवन का कोई अर्थ मागती राधा । आहत मृगी सी आखो म जीवन की कामना लिए राधा । फिर, अगो को ढकती साडी को फाड फेंकने के लिए उद्यत हो उठी उन्मादिनी राधा।

मैं महानगर चला आया। म अपने धन्धे म तरक्की कर गया था। मेरी रिपोर्टिंग इस अर्थ म विशिष्ट होती कि उनम केवल समाचार के अतिरिक्त भी कुछ होता मूल्यो की कोई ध्वनि पक्तियो के बीच म पढा जानेवाला कोई अर्थ। एक प्रसिद्ध सिने पत्रिका ने मुझे चुन लिया। आदेश मिला कि मैं प्रसिद्ध कैबरे डान्सर मोना का इन्टरव्यू लू। उस रात रिट्ज' मे मोना का 'स्ट्रिपटीज' था।

उसी पत्रिका म मोना का चित्र देखता म अवाक रह गया। यह निश्चय ही राधा है। वक्ष के उभारो पर एक क्षीण पट्टी, जाघो के बीच भी केवल एक क्षीण पट्टी । सारे अनावृत शरीर को एक उन्मत्त मुद्रा मे साधे, वह आखो मे नशीला आमन्त्रण लिए खडी थी। 'शी इज आन फायर !' साथी पत्रकार कह रहा था।

रिट्ज होटल का विशाल हाल खचाखच भरा था। रगीन बल्बो का प्रकाश किसी मायानगरी के सम्मोहन की सृष्टि कर रहा था। हर मेज पर शराब थी। हर दृष्टि म नशा था।

आर्केस्ट्रा बजना आरम्भ हुआ। उस मायानगरी के सम्मोहन मे, आर्केस्ट्रा का सगीत जादू जगाने लगा। जाम गिलासो मे उडेले जाने लगे। नजर उन्मत हो उठी। मैंने देखा, वहा पुरुष ही नही, महिलाए भी थी—सभ्रान्त महिलाए जिनकी आखें पुरुष-आखो मे होड कर रही थी—नशे की होड।

मैं स्टेज के बिलकुल सामने था।

सहसा प्रकाश बुझ गया। फिर केवल एक नीला प्रकाश फैला और नीले प्रकाश से उस सागर मे, सफेद परो से सजी मोना हसनी सी तैरती आई। उसने अदा से अभिवादन किया। हाल तालियो से गूज उठा।

आर्केस्ट्रा के स्वर धीमे हुए, फिर धीरे धीरे तीव्र होने लगे। मोना के थिरकते अगो की गति तेज होने लगी धुन और गति मे होड होने लगी। नीले प्रकाश के सागर मे, राजहसिनी-सी सगीत की लहरो पर तैरती मोना अपने पख नोचकर फेंकने लगी।

नाचती मोना धीरे-धीरे अनावृत हो रही थी। नारी अग के मोहक उभार, नारी अगों का पवित्र लावण्य अनावृत हो रहा था। वह वासना का आमन्त्रण दे रही थी। सैकडो कामुक पुरुषो की आखें उसपर निबद्ध थी।

सहसा मोना स्टेज से उतरी। दर्शको के बीच नाचने लगी। मैं स्तब्ध था। उन्मादिनी-सी नाचती मोना मेरी ओर बढी मेरे गले मे बाहे डालकर झुकी, कान मे होठ सटाकर कहा 'भैया'। दूसरे ही क्षण और वेग से नाचती वह स्टेज पर पहुच गई थी। वह सारे पख नोचकर फेंक चुकी थी। उसने झटके से वक्ष के पख खीचकर फेंक दिए मैंने आखें कसकर बन्द कर ली। 'भैया' शब्द एक आर्तनाद सा मेरे भीतर प्रतिध्वनित हो उठा था।

नागपाश

क्या मैं अन्दर आ सकता हूं ?' वही गभीर गुजित सुपरिचित पुरुष स्वर छवि के डाइग रूम मे गूज गया ।

छवि अगरबत्ती-स्टैंड म लगी सुलगती, गन्ध विखेरती पूरी पाच अगरबत्तिया को एकदम देखती द्वार की ओर पीठ किए आत्म विस्मृत-सी खडी थी । सद्य स्नाता । घन घुघराले केश सफेद साडी के आचल पर, पूरी पीठ पर बिखरे थे । एकाध घुघराली लट किंचित् उज्ज्वल कपालो पर झूल ही जाती थी जिन्ह अदा से नही कठोरता मे पीछे करत छवि कठिन हो उठती थी । धीरे-धीरे विगत छ वर्षों म, अपन बहुत कुछ कोमल को ऐसी ही कठिनता स, उन रेशमी लटो सा ही, जूडे म कठोरता म कसती छवि जसे नागपाशो स जकडी जाती रह गई है ।

"मैंने कहा क्या मैं अन्दर आ सकता हू? वह गम्भीर गुजित स्वर फिर गूजा । छवि की धडकना म उस स्वर की अनुगूज शत शत प्रतिध्वनिया म ध्वनित हो उठी थी, किन्तु आज हाठ निर्वाक होकर रह गए थ ।

"क्या बात है छवि ? तबियत ठीक नही है क्या, जो मुझे अन्दर ाने के लिए भी नही कह रही हो ?" व सधे कदम बढ और उन मथ, पुष्ट भुजाओ न सचमुच चकराकर गिरती-सी छवि को थाम ाया । सहारा देते वे कदम वे भुजाए छवि को कोच तक ले आईं, ठोगी या लेटना चाहोगी ? क्या बात है डॉक्टर को फोन करू ?"

वे पुष्ट, समथ भुजाए, अभी तो छवि के कन्धा को घेर थी ी सुरक्षा को गहरे महसूसती छवि ने मुदी पलका को खोलकर

देखा—उन समय भुजाओं वाली पुरुष दृष्टि याचक-सी थी छवि का सब कुछ दन को तत्पर भुजाए, और मात्र कुछ' मागती-सी आतुर दृष्टि । छवि का दिनकर की 'उवशी' काव्य की कुछ पतिया स्मरण हो आइ जो विराम के सुख के साथ साकार होती उसकी आखो म रात दिन कौधन लगी थी—पुरुषोचित प्रबल शौय का नारी की मोहक सुकुमारता के प्रति समपण ।

छवि ने एक सप्रयास मुस्कान म किसी नि श्वास को दवा लेना चाहा कुछ परे हटती सयत होनी धीर स हसी—'तुम भी तो अन्दर आकर पूछत हो कि क्या मैं अन्दर आ सकता हू ? सच किसी जरा भी तो नहीं बदले तुम । एम० पी० हो गए तो क्या, हो वहा जाट हो भी तो हरियाना के !'

विकास न पर हस्ती छवि को बाहो क घर से मुक्त कर दिया था। सप्रयास मुस्कराती, छवि की गहरी आखो स दखत उसने भी कदाचित् किसी गहरी नि श्वास को दबा लेना चाहा, हसने का प्रयास करत बोला, हू तो हरियाना का लेकिन जाट कहा रह गया? जाट होता तो एस बार बार नहीं पूछता कि क्या मैं अन्दर आ सकता हू ? सीधे अन्दर घुस आता । और एम०पी० न होकर चम्बल घाटी का कोई डाकू होता तो सीधे सीधे तुम्ह उठा ले जाता सच छवि ! अब तो जी चाहता है कि एम० पी० का पद छोड छोडकर डाकू बन जाऊ—तुम्हारे लिए।'

'*तुम और डाकू ? छवि सचमुच हस पडी 'डाकुओ के चेहरे* क्या एस होत हैं ?"

"एसे कसे ?" विकास न छवि की आखो में अपनी अभ्यथना को दख लिया था तीव्र हो उठी धडकनो को दबाने के लिए वक्ष पर हाथ कस लिए थे ।

'जैसे जैसे कि तुम हो।' छवि झेंप गई । पल भर के लिए छवि क विवण मुख पर रग उभरे अगले ही क्षण छवि ने जसे उन रगो को परे ढकेल दिया छवि का मुख फिर वैसा ही विवण हो उठा, जिसकी विवणता विकास के वक्ष म नश्तर चुभा जाती

थी। छवि के यद क्दा रजित हो उठने मुख के अल्पजीवी रगो को दीघजीवी बनाने के लिए विकास अपने प्राणो का रक्त दे सकता था देना चाहता ही था किन्तु छवि थी कि उन रगो को भी रर ढकेल ढकेल देती थी और ठीक अपनी श्वेत साडियो के आचल सा ही, अपनी मुख को भी कसकर ओढे रहती थी।

पति, मेजर अजय वमा के क्षितिज के उस पार जाने के पश्चात जब छवि इस पार जिन्दगी की स्थूल राहो म भी अकेली खडी रह गई थी तो ऐसे ही एक दिन अचानक विकास आया था, और एसे ही बोला था, "क्या मैं अन्दर आ सकता हू ?" किन्तु उस दिन विकास अनुमति पाने के लिए बाहर ही खडा रहा था। सुधि के धुधलके मे खोया सुपरिचित स्वर पलभर म छवि के कानो म विस्मृति और समय के दस्यो को नकारकर, वसे ही गूज गया, जसे उन विदा के क्षणो म गूजा था, "जा रहा हू छवि मालिक और नौकर के बीच का यह फासला मिटाने के लिए, तुम्हारे योग्य बनने के लिए मेरा इतजार करना!" वह स्वर सुनते छवि लडखडा सी गई थी विकास ने बिना अनुमति की प्रतीक्षा किए छवि को सभाल लिया था और बाहो से घेरे कोच पर बैठाकर ऐसे ही पूछा था 'तबियत ठीक नहीं है क्या ? डॉक्टर को फोन कर दू ?' और छवि पथराई आखो मे विकास को देखती रह गई थी। अब विकास किर लौट आया था, किन्तु अब छवि ही कदाचित बहुत दूर जा चुकी थी।

उसके पश्चात छवि जानती थी कि केवल छवि के लिए विकास ने अपना तबादला छवि के शहर म करवा लिया है अर्थात किसी समय और स्थितियो के सारे अन्तराल को मिटाकर भी उसका ही है किन्तु छवि का लगता—विकास के सान्निध्य के क्षणो म छवि को बार-बार एसा लगता जैसे एक नदी के दो तटो जैसे तो य स्वीकार और समपण की तरगो को प्यार की सरिता के आलिगन म समेट भी दो तटो जैसे ही विलग हैं और उनके बीच है लहरो के आलो डन भवरो के आवत्त जिन्दगी के ज्वार और भाट, स्थितियो की दूरिया। 'एक नदी के दो किनारे मिलने से मजबूर' जैसी मस्ती

फिल्मी गीत की पंक्ति, छवि को विकास के सान्निध्य के क्षण मे आकुल तटो के अलगाव और उनके बीच बहती उन्मादिनी धारा की अत्यधिक सटीक उपमा लगती—सटीक, गभीर, गहन

प्रथम दिन, मेजर अजय वर्मा के चित्र के सम्मुख कैप उतारकर, एक मिनट की मौन श्रद्धाजलि देते विकास की आखें नम हो आई थी, 'सब सुन चुका हू छवि! तुमपर जो भी गुजरी है, उसे सुना ही नही, महसूस भी किया है और अब जब लगा है कि तुम्हे शायद मेरी आवश्यकता हो, तो बिना बुलाए चला आया हू मैंने गलत तो नही किया ?"

छवि ने नम आखो वाले सबल, समथ पौरुष युक्त विकास को, सामने बैठे अपने स्वप्न को वर्षों बाद साकार देखा तो देखती रह गई थी—नि शब्द, निर्निमेष! एस०पी० की वर्दी मे कसा उच्चाधिकारी अफसर, छ फुटा विकी, उसके सामने अपराधी के समान याचक जैसी मुद्रा म बैठा था कमरे की फिजा म उनके तीव्र धडकते वक्षा के ध्वनित हो उठे स्पदन अप्रकट म केवल वे दोनो ही सुन पा रहे थे, प्रकट मे सब कुछ खामोश था—हवा, दीवारें छवि और विकी के होठ। स्वरहीनता नि शब्दता भी इतना प्रबल शब्दमयी हो सकती है, यह छवि ने उस दिन पहली बार जाना था। नेपथ्य मे स्वरो के प्रबल झझावात को झेलती छवि ने, प्रकट म सहजता से मुस्कराने का प्रयास करते हवा के सहज झोको स स्वर म पूछा था, 'कैसे हो विकास तुम अपनी बताओ ? मैं न सही तुम तो सुखी हो। इतने ऊचे अफसर बन गए हो। सुना शादी कर चुके हो और पत्नी खूब-खूब सुन्दर है। अपने कितने नन्हे प्रतिरूप तैयार कर दिए ?' मुस्कराती छवि हसने लगी थी अपने ही परिहास पर। चाह रही थी कि विकास भी हस पडे और कुछ देर के लिए हवा, दीवारें उनके होठ सब मुस्कराते रहे मुस्कराने का अभिनय ही करें।

किन्तु उत्तर देता विकास, अभिनय नही कर सका था। छवि की आख सूखी थी विकास की आखें, स्वर सब आर्द्र हो उठे थे, " हा छवि! बहुत खुश हू। ऊचा अफसर बन चुका हू, पत्नी भी

सचमुच खूब सुन्दर है, दो प्रतिरूप भी तैयार हो चुके हैं—आकाश और सरिता। किन्तु इतने ढेर सारे सुखों के बीच भी तुम्हारा विकी, कितना अकेला है इसे क्या तुम्हें भी समझाना छवि? मेरे एक प्रश्न का उत्तर दो—तुमने मेरा इन्तजार क्यों नहीं किया?"

छवि ने आँखें उठाईं, "कैसे इन्तजार करती, मैं बहुत असमर्थ थी विकी, बहुत अकेली और फिर एक अकेली लड़की परिवार का, समाज का सामना कैसे करती? लेकिन तुमने भी तो इन्तजार नहीं किया। और जिस अधिकार से तुम मुझे इन्तजार करने के लिए कह गए थे, उसके बल पर, सबल पुरुष होने के नाते, तुम तो इनकार कर सकते थे किन्तु तुमने भी तो उस इन्तजार को झुठला दिया फिर अब आज क्या, किसलिए, किस अधिकार से मेरे पास आए हो बस वही सब दुहराने?"

विक्रम आहत-सा स्तब्ध रह गया, "तुमने मुझपर जो इलजाम लगाया है, उसकी सफाई अपनी ओर से मैं कर दूंगा तुम विश्वास करो, न करो तो सुनो! मालती की तो याद है तुम्हें, मेरी छोटी बहन। जानती तो हो, पिताजी उसका विवाह कर पाने में असमर्थ हो चुके थे, मुझसे बड़ी तीन बहनों की डोली उठाते, उनकी अर्थी ही उठ गई थी। मालती तरुणाई के द्वार पर खड़ी, यौवन की नैसर्गिक पुकारों को सुनती द्वार की लक्ष्मण रेखा लांघती दौड़ पड़ी थी, पड़ोस के एक युवक की बाहों में बंधने और उसे गर्भ रह गया था। उस युवक के परिवार वालों की एक ही शर्त थी कि मैं उनकी बेटी को स्वीकार कर लूं तो वे मालती को स्वीकार कर लेंगे। हां छवि, मैंने उनकी शर्त स्वीकार कर ली, उन्होंने मालती को स्वीकार कर लिया। आज कम से कम मालती तो सुख से है। पूरे चार तैयार कर लिए हैं और इतनी मुटा गई है कि उसे देखकर तुम उसके सुख के वजन का भी अन्दाज लगा सकती हो!" सहसा विकास का स्वर धीमा, तरल, अति आर्द्र हो उठा "सुख में वजन के लिहाज से मैं भी देखने में कम वजनदार नहीं हो गया हूं किन्तु छवि, तुम तो सचमुच बिलकुल वजनहीन होकर रह गई हो। ऐसे कैसे जिओगी?"

हा, रश्मि और राकेश को स्कूल के लिए तयार करती, उन्हे यूनीफार्म पहनाती, ब्रेकफास्ट कराती, उनके बाल सवारती, फिर उन्हें कार म स्कूल के लिए भेजती छवि कार के ओझल होती ही सहसा एकदम अकेली हो उठती थी राज नय सिर से। रोज़ नये सिर से एक यातना को जीते उसे लगता था कि पीड़ाए चिर सहचर होता है सुख बहुत जल्दी बासी हो जात ह, लेकिन घाव हरे बने रहत है।

फिर वह दौडती-सी बाथरूम म घुसकर शावर के नीचे बैठ जाती थी प्राय विवश हुए बिना ही पूरे वस्त्रो सहित। शावर की फुहार के नीचे बैठी छवि को प्राय समय की सुधि भी नही रहती थी, उन फुहारो के नीचे जैसे उसकी कोई तपन ठडी होन लगती थी हो जाती थी किन्तु कहा ? दूसरे दिन वह तपन भी तो नय सिरे से तप उठती थी।

गर्मिया म तो खैर ठडे शावर के नीचे बठी छवि मनचाही देर लगा लेती थी किन्तु जाडो मे धायमा बाथरूम का दरवाजा पीटती चीखने लगती थी ये ल्लो। इहा पर गरम पानी तैयार किए बैठी हू और तुम ठडे पानी स नहाय रही हो। नहाओ, नहाओ, खूब मारो अपने को और साथ में इस बुढिया करमजली को भी। इसी दिन के लिए तो तुमका दूध पिलाके जिलाय था कि आज तुमका मरती देखे तिल तिल जलती देखें हे राम ! हमका उठाय लो परभू।" और धाय मा सिर पीटती, फूट फूटकर रोन लगती थी। धाय मा की चीख पुकार से विवश होकर छवि ने जाडो म शावर के नीचे बैठना छोड दिया था, फिर भी जब-तब वह अपन को रोक नही पाती थी

धाय मा की आखें बचाकर शावर के नीच व ठ ही जाती थी किन्तु बर्फीले पानी से नहाकर थरथर कापती छवि को फिर भी लगता कि उसकी शिराओ मे तपन वैसी ही है।

नहाकर प्रतिदिन एक ही-सी साफ सफेद साडी लपेटकर, घन, घुघराले केश बिखेरे वह ड्राइगरूम म आती, अगरबत्तिया सुल गाती और फ्लॉवर पॉट के सजे फूलो को अपलक देखती बठी रहती—देर तक। सामने कार्निस पर मेजर अजय वर्मा, उसके पति

का चित्र मुस्कराता होता और छवि सूखी आखो स रोती होती।

अजय चीन-पाकिस्तान-युद्ध म शहीद हो गए थ। मत्योपरान्त सरकार से सम्मानित अजय वमा का नाम अखबार की सुर्खियो मे छपा था, चित्र भी। फिर वह चित्र अजय वर्मा के ड्राइगरूम म कार्निस पर सजा और छवि की आखो म धसा रह गया था। अजय क्षितिज के उस पार जा चुके थ छवि को इस पार छोडकर अजय और छवि के बीच जीवन और मत्यु की दूरिया फैल गई थी अजय की तो खर, वास्तव म मृत्यु हो चुकी थी तीन गोलिया उसके सीने क पार हो गई थी किन्तु छवि को जो जीवित मत्यु झेलनी पड रही थी, उसके ग्राम का झेलती छवि का लगता उसके वक्ष म धमती शब्दहीन आकारहीन गालियो की सख्या सख्यातीत है।

अजय की मत्यु के समय राकेश और रश्मि छ छ वष के थे—वे जुडवा थे, कद रग-रूप और प्रकृति म अद्भुत साम्य लिए थे। एक साम्य वे दोना और लिए थ—मा छवि का नही, पिता अजय का ही रग रूप और प्रकृति सभी म। अपने एरोगन्ट पिता सा ही उद्दड था राकेश। रश्मि, कदाचित लडकी होने के कारण उतनी उद्दड नही थी, किन्तु छवि की मदुलता या सुकुमारता उसम भी नही थी। धाय मा दोनो की पकड धकड करती, चीखती होती थी 'निगोडे दुइना बाप पर गए है। अरे, कोई तो मा जैसा होता तो का छवि बिटिया इतनी अकेली होती! अर छवि बिटिया के तो भाग शुरू से ही फूटे रहे पैदा भई तो मा अक्ली छाड गई बाप न ग्रम्म बीतत न बीतत दूसरा विवाह रचाय लिया। हमने का किया, पैसा लिया, दूध पिलाया, कौनो मा बाप का दुलार दिया का? चलो राम राम कर जी गई, बडी भई तो जिसे चाहा ऊ न मिला अऊर सब मिला फिर वह साथ छोड गए। पता नही छवि कैसा भाग लेकर आई है, जो कबहू हसी नाही हस ही नाही सकी मुदा हस तो सकत है' धाय मा का स्वर अस्फुट हो उठता 'लेकिन ई पारबती जी का कौन समझाए कि अब भी शिव जी तो इनके दुआरे आ खडे भए है तबहू ई तपस्या करँ जाय रही है, काहे बद!"

सचमुच छवि को समझना या समझाना कठिन था।

वर्षों का अतराल पार कर जब विकास फिर अचानक छवि के द्वार पर आ खडा हुआ था तो धाय मा क अस्फुट स्वर स्पष्ट होन लग थे, उसके इगित भी। किन्तु छवि सब कुछ को नकारे जा रही थी—विकास का, धाय मा को और सबसे अधिक स्वय को।

धाय मा से छवि का किशोरी से तरुणी होती छवि का अतगत, उसकी कामना छिपी नही थी। विकास को दखते ही छवि की आखो मे जो अदृश्य कामना जागती, होठों पर जो अनकही प्राथना उभरती, उसे छिपाने, छवि धाय के वक्ष मे मुख छिपा लिया करती थी और विकास, उस सबके प्रति एक अभ्ययना सी लिए भी मौन रहा आया था। छवि विकास की आखो की भी कामना थी, विकास के होठो की प्राथना भी। किन्तु छवि सेठ पन्नालाल की बेटी थी और विकास उसके मुनीम कालीचरन का बेटा। छवि और विकास के नैकट्य के बीच उनके पिताओ की स्थितिया के फासले थे—यद्यपि होनहार, प्रतिभावान विकास उन फासलो का छलागता हुआ पार कर रहा था, किन्तु समय विकास की छलागो से अधिक तेज दौड रहा था। छवि युवती हो चली थी। बी० ए० ऑनस हो चुकी थी। और विमाता विकास और छवि के बीच पनपत स्नह के अकुरो को उखाड फेंकने के लिए व्यग्र हो उठी थी छवि की सौतेली पुत्री होने की यही सजा थी।

धाय मा न, साहस बटोरकर एकाध बार सेठजी से विकास का जिक्र किया भी था, छवि के सदभ म, तो उनका लक्षाधिपति होने का दप गुर्रा पडा था पागल हुई हो धाय मा! मेरी बेटी, सठजी की बेटी होकर एक मुनीम के घर जाएगी? रोटी-बेटी का व्यौहार बराबर वाला म होता है—मालिक और नौकरो के बीच नही।"

विकास ने सेठजी की गुराहट को अपने कानो स सुना था और फूट फूटकर रोती छवि के मुख को केवल एक बार हथलियो म भर कर कहता छोड गया था, 'जा रहा हू छवि, मालिक और नौकर का यह फासला मिटाने के लिए, तुम्हारे योग्य बनन के लिए मरा

इंतजार करना।'

किंतु छवि के वश में वह इंतजार करना भी कहां था ? एक-एक वर्ष के अंतर पर विमाता से जन्मी तीन बहनें भी वय संधि को पार कर रही थीं तो सबसे पहले छवि का ही विवाह वेदी पर चढ़ना था कि फिर वे तीन भी अपना-अपना प्राप्य शीघ्र पा सकें। विमाता का तर्क यही था "छवि सबसे बड़ी है। उसका ब्याह हो ले, तो मेरी राजकुमारियों-सी बेटियों के भी हाथ पीले हों। और कोई मेरी राजकुमारियों को राजकुमारों की कमी नहीं है। रोज ही रिश्ते आ रहे हैं बस इस छवि के मारे मेरी बेटियों का महंदी-महावर टलता जा रहा है।" विमाता ने तीन पुत्रियों के पश्चात् एक पुत्र, अर्थात् कुलदीपक वंशधर को जन्म देकर, सेठजी को अपने पूरे अधिकार में कर लिया था। सेठजी केवल व्यापार चलाते थे, शेष सब छवि की विमाता के इंगितों पर चलता था। मजाल थी कि विमाता के इंगित के बिना पत्ता भी हिल जाए।

छवि ने एक वर्ष मौन विद्रोह किया फिर विमाता से डबडबाती आंखें लिए प्रार्थना भी की 'मां, मुझे ऐसे ही रहने दो या मुझे कहीं और भेज दो। मैं ब्याह नहीं करना चाहती, पढ़ना चाहती हूं। तुम इजाजत दे दो तो मैं धाय मां को लेकर नानी मां के पास चली जाऊं उनके गांव। वादा करती हूं कभी नहीं लौटूंगी।'

सुलगती विमाता आग हो गईं 'हां, हां जा गांव या भाग न जा उसके साथ, जिसके इंतजार में पारबती बनी बैठी है। लगा दे अपने बाप के मुंह पर कालिख और जो चाहे सो कर।"

विमाता का कुतर्क अकाट्य था। छवि को संस्कारों और उन्हीं कुतर्कों के नागपाशों से बांधकर अजय वर्मा के पार्श्व में खड़ा कर दिया गया था। छवि से उम्र में दस वर्ष बड़े मेजर अजय वर्मा के पार्श्व में उनकी पत्नी के रूप में। धन, पद, सब कुछ था मेजर वर्मा के पास और पत्नी का ही नहीं, संतान का स्थान भी रिक्त था, 'अरे, हमारी लाडो के तो भाग खुल गए जो ऐसा रिश्ता आया। वह तो छवि बड़ी है, अच्छा नहीं लगता, वरना मैं तो अपनी सविता के लिए

मजर का रिश्ता सिर-आखा पर ले लेती। बस, एक उम्र ही तो कुछ ज्यादा है, तो मद की उम्र नही देखी जाती। छवि के पिताजी भी ता मुझसे इत्ते ही बडे मिले तो क्या कमी रही ?'

और प्रकट म रेशमी पाशा से बधी, किन्तु अप्रकट म किन्हीं नागपाशो स जकडी, छवि ने मेजर वर्मा के साथ अग्नि की सात प्रदक्षिणाए लेते अपनी डबडबाती आखो को मूदकर, विकास की मूर्ति बसाए मन के एकात वक्ष के कपाट कसकर बद कर लिए थ प्यार के द्वार पर कतव्य का, धम का ताला जड दिया था ।

छवि ने तो अपनी डबडबाती पलकें थरथरात होठ कस लिए थे, किन्तु धाय मा वधू वेश म सजी छवि को छाती से सटाती आत्तनाद कर उठी थी उस आत्तनाद का अथ केवल छवि ही समझ सकी थी, वह आत्तनाद छवि के नि शब्द चीत्कारो की प्रतिध्वनि जो थीं धाय मा, छवि के साथ छवि के घर आ गई थी, छवि के दहेज के साथ। "हम छवि बिटिया के बगैर नहीं जी सकती ! हमका बिटिया क साथ जावै दीजिए ' रोती कलपती धाय मा ने छवि के साथ बनी रहन की अनुमति पा लीथी—सेठजी स भी, मेजर अजय से भी। और नागपाशो से जकडी छवि उन नागा के दश के विष से नीली पडती छवि केवल धाय मा की ममता के अमृत स्पश स जीती रह गई थी।

दो वष छवि के शहर मे रुकन क पश्चात आज विकास जान वाला है—जाने से पूव आनेवाला है। तीन दिन पूव आया था, तो कपित कठ से सूचित कर गया था 'रविवार क सवेरे आऊगा छवि, तुम्हारे हाथ की बनी चाय पीन के लिए और एक बार फिर पूछन के लिए भी कि क्या तुम्हारे इन हाथो को चाय सहित जीवन भर पाने का सौभाग्य पा सकता हू ? विकास का गभीर स्वर बहुत सघन, गहन हो उठा था 'विश्वास करो छवि ! मेरे हाथो को तुम्हारा हाथ थामें, जिन्दगी की फूलों स भरी या काटा भरी राहो पर, साथ साथ चलने की वह पागल चाह आज भी वसी ही है और अगर एक बार तुम अपने हाथो को मुझे सौंपोगी तो य जीवन भर तुम्ह थामें नही, कसकर बाधे रहगे—जानती हो न य पुलिस

अफसर के हाथ है ।" वाक्य समाप्त करते विकास विकल हो उठा छवि के दोनों हाथों को अपनी हथेलियों म फूलों-सा भरते उनपर होठ रख दिए छवि ने न हाथ छुड़ाए न एक भी शब्द बस, पाषाण-सी अचल होकर रह गई ।

"माफ करना छवि ! लाख सभाला, फिर भी इतना तो गलत हो ही गया जा रहा हू तीन दिन बाद फिर आऊगा या तो तुम्हे सदा के लिए पाने के लिए या फिर "

"सदा के लिए छोड जाने के लिए !" वाक्य छवि ने पूरा कर दिया था। विकास के होठ, प्रत्युत्तर देने के लिए कापे थे, किन्तु उन्हें कसता, वह लम्बे डग भरता सहसा उठकर चला गया था कैसे छवि से बलपूर्वक स्वय को दूर ले जाने के लिए छवि से स्वय को दूर करने का विकास का वह प्रयास, विकास के कसे होठो से लेकर, पुष्ट पुरुष-अगो का वह कपन, छवि से छिपा न रह सका था विकास लडखडाता-सा चला गया था छवि लडखडाती सी बैठी रह गई थी। लडखडाहट मे भी यदि गति हो तो शायद उसका त्रास उतना त्रासद नहीं होता, जितना निस्पन्द होती, पथराती लड-खडाहट का जो किसी मृत्यु की पूर्व सूचना-सी होती है छवि अपनी ऐसी ही मृत्यु को अपने नागपाशो के कसते पाशो के बीच देखती बैठी रह गई थी।

शनिवार की शाम छवि देर तक शावर के नीचे बैठी रही थी धाय मा ने दरवाजा पीटकर खुलवाया था, फिर सिर पीटती बोली थी, "छवी बिटिया ! आखिर कउन माटी की बनी हो तुम ? हाड-मास की या पाथर की? चलो बाल सुखाओ, साडी बदलो और तनी सोचकर देखो—काहे बिक्की बाबू का ठुकराय कर सारी जिन्दगी को ठोकर मार रही हो कैसे काटोगी पहाड सी जिन्दगी ? औरत जात। और फिर इतो तो सोचो कि बिक्की बाबू पर का गुजरेगा। मार इत्ता बडा पुलिस का अफसर इत्ता जबदस्त अऊर तुम उन्हका रुलाय मारा। धन्न हो रानी । अबहू मान जाओ तो हमऊ चैन से मरे की सोच।" सिर पीटती धाय मा ने छवि को खीचकर अक म

भर लिया था छवि काप रही थी थरथर, 'लेओ, हम कहा न। आखिर जाडा लाग लागा अब जुर चढेगा और फिर तुम जरूर तपागी। काहे ठडी गरम होत रहत हो विटिया काहे नाही विकी बाबू की सारी सरदी गरमी सउप दती ?"

छवि ने धाय मा को कोई प्रत्युत्तर नही दिया बेडरूम की खिडकी पर बठी केश सुखाती, सिफ एक प्याला चाय पीकर पचमी के चाद को, बहुत पीले चाद को रात दर तक, अपलक, डूबते दखती बैठी रही। सवेरा हुआ, ता खिडकी पर सिर टके सो गई—छवि को जगाती धाय मा कह रही थी, 'उठो विकी बाबू आए है वैठे हैं!" छवि न देखा—धाय मा की आखें सुख थी, शायद सारी रात वह भी जागी थी और उसका स्वय का मुख पीला था रात के चाद जैसा। दपण मे अपन पीछे मुख के चारो ओर छिटकी नागिन सी केशराशि को आज छवि ने जूडे म नही कसा, वैसी ही अस्त व्यस्त विकास के सम्मुख आ वैठी, देखा—विकास की आखे सवरे की लाली जैसी गुलाबी लाल थी उन आखो म एक नये सवरे का आमन्त्रण भी था, रात भर की प्रतीक्षा भी!

'धाय मा, चाय लाओ!" छवि न आवाज दी।

"आज हम चाय वाय नहीं लावेंगे। तुमही जो चाह सो बनाय लेओ हमार मूड पिराय रहा है हम नाही उठ सकत। एक दिन तुम्ही विकास बाबू के बदे चाय बनाय दागी तो का हो जाएगा अभी अऊर कोऊ आय जाव तो देखो, हमार बिटिया कसी खातर करत हैं। अरे राकेस रस्मी के दोस्त ही आ जावैं तो ई घटो नाचत है उनके बद अऊर अभी पाथर बनी बठी हैं" धाय मा का आसुओ से भीगा राष, विकास के सम्मुख भी स्पष्ट हा उठा।

छवि उठी चाय का पानी केतली म रखती ढकना भूल गई उस पानी को खौलते, उबलते देखता रही जाने कब तक कि धाय मा किचन म आ गई, "हम कहा ध न हा विटिया! उहा विकी इन्तजार मे बठे हैं अऊर तुम चाय बना रही हा या खीर! चलो, हमई लावत हैं हे भगवान! हे राम जी!" छवि अपराधिनी-

सी, बिना धाय मा से आंख मिलाए ड्राइंगरूम में आ उठी—निःशब्द पलकें झुकाए।

धाय मां चाय की ट्रे रखती ड्राइंगरूम के परदे खींचती गई। 'अब चाय प्याली में तो डाल ले छवि या आज अपनी किस्मत में इतनी भी नहीं है और देखो आज चाय में शक्कर बिल्कुल मत डालना तुम्हारा स्पर्श काफी है।"

किन्तु छवि ने शक्कर, चाय, दूध सब यथावत मिलाया, प्याला विकी के हाथों में देती, नम आंखों से मुस्कराई, 'विकी! उस उम्र तक पहुंचते-पहुंचते स्पर्शों में मिठास कहां रह जाती है? रह जाती है केवल कड़वाहटें! मैं अपनी सारी मिठास खो चुकी हूं विकी अब मेरी कड़वाहट लेकर क्या करोगे ?"

"तो यही तुम्हारा फैसला है?" विकी का आरक्त होता मुख रक्तहीन हो उठा।

"फैसला नहीं, विवशता है विकी! स्थितियों की, जिंदगी के नागपाशों से जकड़ना की विवशता ये नागपाश मुझे इतना कस चुके हैं, इन नागों के दंशों का जहर मेरी नसों में तो इतना घुल चुका है कि मैं अब चाहूं भी तो न इन नागपाशों से मुक्त हो सकती हूं न इस जहर से "

'और यदि मैं कहूं कि मैं इन नागपाशों को काटकर फेंक सकता हूं।" विकास की आंखों में एक तड़प कौंध गई—विद्युत-सी वह तड़प विकास की आंखों से छूटती छवि के वक्ष पर गिरी समा गई उस विद्युत के प्रहार को झेलती छवि जलकर राख होने लगी थी चाय के दोनों प्याले वस ही ठंडे हुए जा रहे थे।

"मुझे तुम्हारी सामर्थ्य में सन्देह नहीं विकी, मुझे गलत मत समझो। तुम मेरे इस जीवन के स्वप्न रहे आए हो, रहे जाओगे किन्तु इस सपने को सच करने का कोई मूर्त रूप देना या लेना मेरे वश में नहीं है "छवि का स्वर इतना व्यथित था कि विकास की आंखों में आंसू डबडबा उठे थे किन्तु छवि की, स्वयं की आंखें सूखी ही थीं पीड़ा की जिस सीमा को छूकर आंसू सूख जाते हैं छवि कदाचित् उस

सीमाओ के भी परे जा चुकी थी।

'तुम कारण जानना चाहोगे, तो सुनो। अब प्रश्न केवल मेरा या तुम्हारा नहीं, मेरे राकेश और रश्मि का, तुम्हारे आकाश और सरिता का, और सबसे अधिक तुम्हारी निर्दोष पत्नी का भी है। अपनी पत्नी से स्वय का छीनकर मुझे देते, क्या तुम उसके प्रति अपराधी नही हो उठोगे ? तुम तो एस० पी० हो न्याय के रक्षक! क्या इतना बडा अन्याय स्वय कर सकोगे ?"

गभीर छवि सहसा एक नारी सुलभ परिहास कर बैठी, "और फिर ऐसा मुझमे क्या है विकी! सुना, तुम्हारी पत्नी मुझसे कही ज्यादा सुन्दर है! रश्मि राकेश के पापा तो मुझसे कहा करते थे, तुम्हारी जसी साधारण रूप रग की लडकी को अपनाना भी मेजर अजय के लिए कम सक्रीफाइस की बात नहीं थी, वरना मेरे लिए हीरोइन जसी सुन्दरियाँ के आफर थे। वह तो मेरे पिता तुम्हारे पिता के एहसानमन्द थे, मुझे मेजर बना देने के लिए, वही एहसान चुकाया है मैंने।'

मेजर वर्मा का अपमान सुनाती छवि हस रही थी किन्तु उस अपमान को सुनते विकी उबल उठा था, "जो तुम्हे सुन्दर नहीं मान सके वे ही अन्धे थे!" अगले क्षण विकी का ताप, मृदुल तरल हो उठा, 'मैं भी मानता हू छवि की तुम्हारी आखे नीली झील-सी नहीं हैं फिर भी उनकी गहराइया मे डूब जाने का जी चाहता है। तुम उन चम्पा के फूलो सी रूपमयी नहीं हो इन अगरबत्तियो सी गधमयी हो जिसे सासो मे भर लेने को मैं पागल रह आया हू!"

अपनी यह अभ्यर्थना सुनते छवि के विवर्ण कपोल, कुछ पलो के लिए रजित हो ही उठे छवि का मन भी पागल हो उठा कि विकास की उस अभ्यर्थना को स्वीकार कर ले विकास के सुदृढ वक्ष जसे पुरुष अस्तित्व से लता सी लिपट जाए किन्तु उसके रजित कपोल फिर विवर्ण हो उठे थे कदाचित विवर्णता ही उन कपोलो की नियति बन चुकी थी।

"और क्या, तुम्हे जीवन भर ऐसे ही अरक्षित, तीरो की बौछार

के बीच अकेली खडी छोड देना भी एक अन्याय नही है ?" विकास उठकर छवि के पार्श्व मे आ बैठा था, 'छवि जिन नागो का तुम जिक्र करती रही हो भीतर बाहर के उन नागो के बीच तुम्हे डसे जाने के लिए कैसे छोड दू ? क्या तुम मुझे कायर भी बना देना चाहती हो ?" विकास ने धीरे से छवि के कन्धे घेर मात्र लिए थे छवि स्वय उस समय भुजाओ के घेरे मे सिमट आई कुछ पलो के लिए फिर स्वय ही उस कोमल मोहपाश से स्वय को मुक्त करती परे हट गई अपने कठिन नागपाशो को स्वय ही कसती, "जानते हो विकास ! मैंने राकेश और रश्मि के अबोध मन टटोले थे—जानना चाहा था कि वे तुम्हे स्वीकार कर सकेंगे या नही ? परसो, तुम्हारे जाने के पश्चात मैं रात देर तक उनके साथ बनी रही, कहानिया सुनाई, उनकी पसन्द की लोरी भी, फिर धीरे से पूछा था—'राकेश, रश्मि तुम्हे विकास अकल कैसे लगते है ?' 'बहुत अच्छे लेकिन ' कहती रश्मि रुक गई थी, लेकिन पापा जितने नही ' राकेश ने वाक्य पूरा कर दिया था ।"

छवि ने भी अपना कथन पूरा कर दिया था विकास छवि को नही, अपलक, कार्निस पर सजे मेजर वर्मा के चित्र को देखे जा रहा था जिसपर छवि प्रतिदिन चम्पा के कुछ फूल चढा देती थी—विकास को याद आया, चम्पा के पुष्प भौरों को पास नही आने देते—जाने क्यो ?

और छवि सहमा, अपने नागपाश जैसे केशो को जूडे मे कसने लगी थी बार-बार कपोलो पर झूल आती एकाध लट को भी आज उस जूडे के बन्धन मे कस देने पर तुल गई थी ।

ये दूरिया

परसा मेरा बथडे था मेरी सनहवी सालगिरह मम्मी न अपन हाथा मुझे सवारा था और फिर मुझसे कहा था अजु आज गा 'क्यो मुचे इतनी खुशी दे दी कि घवराता है दिल । जी चाहा कि कहू, नही मम्मी मेरा तो गाने को जी चाहता है ए दिल, मुझे ऐसी जगह ले चल जहा कोई न हो ।' लेकिन मैंने कुछ नही कहा केवल मुस्कराकर रह गई । मम्मी ने समझा हागा शायद मैं शरमा गई । अच्छा है मम्मी का यह भ्रम बना रहे कि मैं इतनी खुश हू कि गा सकू, 'क्या मुचे इतनी खुशी दे दी कि घवराता है दिल ।'

फिर मेहमान आने लगे । फीराजी टेपल साडी का आचल सम्भालती, सुनहरी सेण्डलो की एडिया पर अपने कोमल तरुण शरीर का भार तोलती, आई शैडो से रगी पलकें झपकाती, मुचे लग रहा था जैसे मैं युवा हो गई हू । किन्तु युवा होने के मधुर स्वप्निल अहसास के साथ मेरी जिन आखो को सपनो मे डूब जाना चाहिए था उन आखो की नीद जैसे मखमली सेज पर भी वार वार टूट रही थी ।

सत्रह मोमबत्तियो का एक से बुझाती 'हैपी बथडे टू यू सुनती, केक का टुकडा खाती और खिलाती मैं बार बार सपना दखती आखो के खुल खुल जाने का झेल रही थी । राकेश ने 'मेरी हैपी रिटनम टू यू' कहते हुए जिन गहरी निगाहा से मुझे देखा, उनम मुचे डूब जाना चाहिए था, पर मैं डूबते डूबत रुक गई सहजता से 'थक्स कहा और ध्यान से देखा राकेश के चेहरे पर पापा का चेहरा था । मुझे लगा, मेरा चेहरा मम्मी का चेहरा हो गया है क्या हा रहा था मुझे ? मैंने सिर को हल्का सा झटका दिया था, मैं अजू हू, अजना

मिस्टर वीरेन्द्र देसाई आइ० ए० एस० और मिसेज सुहासिनी देसाई, वीमेन्स कालेज की प्रिंसिपल की एकमात्र लाडली। सहेलियां कहती हैं कि उन्हें मेरे भाग्य से ईर्ष्या होती है। कितनी अच्छी मम्मी है मेरी कितनी 'क्वालिफाइड'! कितने अच्छे पापा हैं मेरे, कितने रिफीफाइड! और कितनी अच्छी हूं मैं, ब्यूटीफुल ब्रिलियंट स्मार्ट!

राकेश मेहमानों के बीच मुझसे सटा-सटा चल रहा था। मैंने देखा, राकेश को और मुझे इतने निकट देखकर मम्मी की रीती आंखें भरी भरी लग रही थी। मैं जानती थी कि वह राकेश को मेरे जीवन साथी के रूप में देखने की कामना रखती है। राकेश को और मुझे साथ देखकर उनकी खूबसूरत आंखों में दीपक से जल उठते हैं। वरना तो मैं अक्सर सोचा करती हूं कि मम्मी की ये खूबसूरत आंखें इतनी बुझी बुझी-सी क्यों रहती हैं, जबकि वह मसकरा और आई शैडो का प्रयोग निहायत खूबसूरती से करती है। मुझे लगता है उनकी रीती आंखों में केवल साड़ियों के रंग झिलमिलाकर क्यों रह जाते हैं, वे रंग क्यों नहीं झिलमिलाते जो शायद वहां भीतर से आते हैं।

मम्मी की भरी भरी आंखों को कनखियों से देखती, सपनों में डूबती मैं राकेश से 'स्वीट नथिंग्स' की बातें करने लगी थी। पापा अभी नहीं आए थे। मम्मी मेरे पास आइं, देखा अंजू आज भी तेरे पापा को फुरसत नहीं है।' उनकी नींद टूटी होने लगी थीं, मेरी सपना देखती आंखों की नींद उचट गई थी क्यों नहीं आए पापा, उन्हें आना चाहिए था! तभी पापा आए। पीछे पीछे एक बड़ा सा बंडल उठाए शोफर था। लेडीज एंड जेंटलमन, आज आप सबके सामने मैं अपनी बेटी को जिंदगी की हकीकत प्रेजेंट कर रहा हूं। हमारी आपकी सबकी हकीकत!' कहते हुए पापा ने बंडल का कवर खींच दिया। मानव की हड्डियों का ढांचा, एक 'स्केलेटन' सामने था! मेरी तो चीख निकलते निकलते रह गई। मम्मी का चेहरा आवेश से लाल हो गया। लेकिन पापा थे कि उन्मुक्तता से हंस जा रहे थे। फिर पापा मेरे निकट आए और जेब से एक मोतियों की

माला निकालकर मेरे गले में पहनाते मुझे चूम लिया। कुछ देर पहले मम्मी ने भी मुझे चूमा था। पापा और मम्मी के चुम्बन के बीच आज यह स्केलेटन आ गया। मैं जानती थी मम्मी को पापा का इतनी देर से आना और यह स्केलेटन लाना जरूर बुरा लगा होगा। पापा ने मुझे मोतियों की माला भी प्रजेंट की थी, लेकिन मैं खूब जानती थी कि मम्मी को स्केलेटन ही याद रहेगा, मोती की माला व भूल जाएगी।

और हुआ भी यही। मेहमानों के विदा होते ही उन्होंने पापा से कहा 'क्या हो जाता है डियर तुम्हें? बर्थडे के दिन बच्ची को स्केलेटन प्रेजेंट करते तुम्हें बुरा नहीं लगा?'

पापा के होठों से फिर हँसी झर गई 'देखो डार्लिंग तुम फिलासफी में एम० ए० हो। फिर जिन्दगी की हकीकत को प्रेजेंट मानने से क्यों हिचकती हो? और हमारी बेटी तो डाक्टर बनने जा रही है उसे भी तैयार होने दो। लेट हर लर्न टु एक्सेप्ट नेकेड फैक्टस अंजू को भी नंगी सच्चाइयों से सामना करने दो!'

मम्मी का खूबसूरत चेहरा आवेश से विकृत होने लगा था। पापा गलती न मानने के अन्दाज में हँसते-हँसते सख्त होने लगे थे और मैं मम्मी और पापा के तनाव के बीच तनने लगी थी। खाने की मेज पर लजीज डिनर खाते खाते हम तीनों उन खिलौनों से जड़ हो गए थे जिनकी चाबी खत्म हो गई हो।

याद आता है, बहुत छोटी थी तब। एक रात सपना देखते देखते डर गई थी, रोने लगी। आया नई थी। उसके बहुत कोशिश करने के बावजूद जब मैं चुप न हुई तब वह मुझे मम्मी के बेडरूम तक ले गई। दरवाजा खटखटाने पर पापा निकले, तुम्हें बड़े घरों में काम करने का सलीका नहीं आता आया? बेबी रो रही थी तो हम क्या डिस्टर्ब किया, तुम किसलिए हो? गेट आउट! पापा ने धड़ाम से दरवाजा बंद कर लिया। मैं सहमकर चुप हो गई और जब आया ने मुझे मेरे बेड पर लिटाया तो सिसकियों से घुटती साँसें लिए मैंने आँखें बन्द कीं। नन्हें से मन में बार बार आ

रहा था कि डर लग रहा है मम्मी के पास जाऊंगी। लेकिन पापा के 'गट आउट' ने नन्हे मन की कामना को ऐसा तमाचा जड दिया था कि उसे मैं कभी न भूल सकी।

सवेरे मुझे बुखार चढ आया था। जब आख खुली तो कालिज के लिए तयार मम्मी मेरा माथा सहला रही थी, देखो आया, बेबी का ख्याल रखना। मैं नर्स भेज दूगी और शाम को पाच छह बजे तक आऊगी। एक मीटिंग है।

और वह चली गई। एक घटे म ही उनकी भेजी नर्स आ गई। डाक्टर भी आए। मुझे रुलाई अब भी आ रही थी। नर्स का चेहरा काला था और इतना कठोर लग रहा था कि मैं बिना उसकी ओर देखे कडवी दवा चुपचाप पी लेती रही थी। जल्दी ठीक हो जाऊ तो इस गन्दी नर्स से पीछा छूटे, कितनी काली है लेकिन मम्मी तो बिलकुल गोरी है फिर क्यो कभी कभी इस नर्स जैसी कठोर लगने लगती हैं। मुझे अकेली छोडकर जाती मम्मी का चेहरा भी तो इसी नर्स की तरह हो गया था। और फिर तीन दिन तक मैं आखे बन्द किए चुपचाप कडवी दवा पीती रही। मम्मी कालिज जाती रही। पापा आफिस जाते रहे। और रात को भी मै अपने बेड पर अकेली सोती रही। हा, उन तीन रात मेरे पास आया के साथ नर्स भी थी।

बुखार उतरने पर मुझे लगा, मैं कही अकेली हो गई हू। पापा और मम्मी बिलकुल मेरे पास वाले बेडरूम म ही तो सोते हैं। आया ने समझाया, 'तुम बडे घर की बच्ची हो बेबी, बडे घरो म बच्चे कही मम्मी के पास सोते है, मैं तो हू न तुम्हारे पास !

क्या आया, तुम्हारे कितने बच्चे है ?' एक दिन मैंने पूछा।

पूरे चार हैं बेबी।' आया मेरे बालो पर ब्रश फेर रही थी छोटा तो अभी दूध पीता है। मैं तुम्हारे पास रहती हू रात को न, रात भर रोता होगा बेचारा।'

'दूध पीता है, रात भर रोता होगा !' मुझे कुछ समझ नही आया, 'दूध पीता है तुम्हारा, आया ? कैसे ?'

'जैसे सब बच्चे पीते है। आया हसी और मुझे कपडे पहनाने

लगी, स्कूल का देर हो रही थी।

उस दिन स्कूल म मेरा मन बिलकुल नही लगा। इतनी गलतिया की कि टीचर ने डाटा, लडकिया ने चिढाया। और मैं सोचती रही कि क्या एस भी बच्चे होते हैं जा अपनी मा के इतने निकट होत हैं कि उसका दूध पीत हैं ?

शाम को मम्मी पापा से कह रही थी 'आया रात मे रुकने के लिए नानुकर कर रही थी। मैंने उसे डब्बे का दूध मगवा दिया है उसके बच्चे के लिए। डब्बे का दूध भी बहुत महगा हो गया है लेकिन अजु का तकलीफ न हो इसके लिए खच तो करना ही पडेगा। अब आया रात म रुक सकेगी।

जब मैं कुछ और बडी हुई ता समझन लगी कि मेरे लिए खच करन म मम्मी या पापा ने कभी कोई कमी नही की। मैंने जा मागा वह पाया लकिन क्या सच म मैंने जा मागा वही पाया ?

हर रात मम्मी और पापा सोने जाने के पहले मुझे 'किस' करने जाते रहे है। रेशमी फिल लगी, नाइटी पहने म एक मिनट के लिए मम्मी और पापा के गले म हाथ डालकर छोड देती हू, 'गुड नाइट डार्लिंग गुड नाइट अजु।' कहकर मम्मी और पापा चले जाते है। पापा अक्सर मम्मी के कधे हाथ से घेर होते है और मम्मी पापा से सटकर चल रही होती है। मैं पापा और मम्मी का हर रात सोने से पहले इस रूम म देखने की आदी हू,सटकर चलते। लेकिन फिर भी मुझे आज तक यकीन नही हो सका कि मम्मी और पापा सच मे सटकर चलते हैं।

अनेक बार मेरा जी चाहा कि अपनी रेशमी नाइटी की फिल नोचकर फेंक दू, जो मेरे और मम्मी के आलिंगन के बीच म आ जाती है आया ने बताया था कि उसके बच्चा के पास कपडे इतने कम हैं कि वे रात म उससे सटकर ही सो पाते हैं वरना सर्दी लगती है। मेरे पास कपडे इतने ज्यादा क्या हैं, मैं सोचती रह जाती थी। लेकिन मम्मी और पापा के बीच म क्या आ जाता है, जो वे मुझे वास्तव मे सटकर चलते जैसे नही लगते। कितनी

क्वालिफाइड हैं मम्मी, कितने डिग्नीफाइड हैं पापा। लेकिन प्राय नाश्ते की मेज पर जब मम्मी एकदम चुप होती है और पापा एक दम नाश्ते में व्यस्त से नाश्ता करते होते हैं तो मुझे यही लगता है कि रात को उनका साथ साथ सटकर चलना झूठ था। सच क्या है, मैं सोचती रह जाती हूं।

नाश्ते की मेज पर मम्मी कहती है, डियर, आज शाम को जल्दी आ सकोगे? पिक्चर चलेंगे।'

नाश्ता समाप्त कर व्यस्तता से घडी देखते पापा कहते हैं 'सॉरी डार्लिंग, आज रात को देर से आऊंगा। बहुत दिनों से ब्रिज नहीं खेला, आज मेहरा के यहां ब्रिज पार्टी है।'

क्वालिफाइड मम्मी आवेश से तनकर रह जाती हैं। कल्चर्ड हैं इसलिए जबान से वह कुछ भी अशोभन नहीं कहती। डिग्नीफाइड पापा पूरी शालीनता से 'सॉरी' कहते हैं इससे अधिक वह कर भी क्या सकते हैं!'

और मैं सवेरे ही समझ जाती हूं कि आज मम्मी भी देर से लौटेंगी पापा भी। फिर जब हम दिन भर अलग अलग रहने के बाद खाने की मेज पर साथ होंगे तो मेरा जी चाहता रहेगा कि मम्मी पापा को और देखकर ऐसे मुस्कराएं कि उन आंखों में भीतर के रंग खिल मिला उठें पापा मम्मी की मुस्कराहट का जवाब ऐसे हंसकर दें कि कमरे की बोझिल फिजा हल्की हो जाए और मैं पुलककर सारा ने मक लेकिन मेरा जी चाहता ही रहेगा और ऐसा कुछ नहीं होगा। होगा केवल यह कि मम्मी कहेंगी मेरा आर्टिकल छप गया है तुमने देखा?' पापा कहेंगे 'आज बिजी रहा डार्लिंग समय ही नहीं मिला, फिर देख लूंगा। मम्मी के चेहरे पर एक व्यंग्य उभरेगा मानो वह कह रही हो, बिजी रहे ब्रिज खेलने में? लेकिन वह कुछ बोलती नहीं हैं। पापा मिठाई का एक टुकड़ा उठाकर मम्मी को खिला देंगे तो वे मरुनी से कहेंगी, थैंक यू लेकिन उनकी आंखों में कोई रंग नहीं झिलमिलाएगा। और हवादार कमरे की फिजा घुटती रह जाएगी।

एक बार मम्मी से मैंने कहा था, मम्मी मुझे अकेला अकेला लगता

है। कितना अच्छा होता यदि मेरे भी बहन होती, भाई होता। आया के चार-चार बच्चे हैं।'

मम्मी ड्रेसिंग टेबल के सामने खड़ी आंखों में मसकारा लगा रही थी। मेरी ओर मुड़कर सख्त निगाहों से देखकर बोली, 'शट अप बेबी, ज्यादा बच्चे जाहिलों के होते हैं।' मैं सहम गई और फिर कई दिन तक रटती रही, ज्यादा बच्चे जाहिलों के होते हैं शायद बल्चड बच्चे अकेले ही होते हैं।

मुझे याद है उन दिनों मम्मी बिल्कुल यंग थी बहुत सुन्दर लगती थी उनके प्रिंसिपल होने की बात चल रही थी और वे खुश भी बहुत थी। तभी उन्होंने एक दिन अचानक मुझसे पूछा था, 'अंजु, डार्लिंग, क्या मैं तेरे पापा से दूर चली जाऊं तो तू किसके पास रहेगी? मेरे या पापा के?' मुझे लगा मानो मम्मी ने पूछा हो, 'मैं तेरी कौन-सी आंख फोड़ दूं दाईं या बाईं?' पर मुझे तो दोनों आंखें चाहिए थीं मैं रोने लगी थी और उनसे लिपट गई थी कुछ नहीं बोल सकी थी लेकिन बेहद डर गई थी। उस बात को वर्षों बीत चुके हैं। मम्मी और पापा आज तक साथ हैं फिर भी मैं उस डर से मुक्त नहीं हो पाई हूं। प्रायः मुझे लगता है कि आज मम्मी फिर पूछेगी 'तू किसके साथ रहेगी मेरे या पापा के?' और मैं फिर रोऊंगी। लेकिन न वह कभी ऐसा कुछ पूछती है, न मैं कभी रोती हूं फिर भी मैं आश्वस्त नहीं हो पाती। लगता है इस सुन्दर मजबूत बंगले की दीवारें कच्ची हैं ये किसी भी क्षण गिर जाएंगी और मुझे दबा देंगी।

इस डर से मुक्त रहने के लिए मैं सदा व्यस्त रहती हूं पढ़ाई में, मनोरंजन में। ये दीवारें तो आज तक नहीं गिरीं लेकिन इन दीवारों को देखते देखते मेरे भीतर चारों तरफ दीवार खिंच गई है और मैं उनमें बन्द हो गई हूं। मुझे लगता है कि मेरा भावी जीवन-साथी, कोई 'प्रिंस चार्मिंग' भी इन दीवारों को लांघकर मुझे नहीं पा सकेगा।

अकेलेपन से मुझे सख्त डर लगता है। लेकिन जिस अकेलेपन के बीच मैं पली, बड़ी हूं क्या अब उसे स्वयं ही छोड़ सकूंगी। मुझे

लगता है पापा के साथ सटकर चलती मम्मी ने जो अकेलापन झेला है, वही मेरी नियति भी है। राकेश को जब देखती हू, उसका चेहरा पापा का चेहरा बनने लगता है मेरा चेहरा मम्मी का बनने लगता है और लगता है कि इस मजबूत सुन्दर बगले की दीवारें कच्चा हैं, ये किसी भी क्षण गिर जाएगी और मुझे निश्चय ही दबा देगी।

मैं हसते-हसते उदास हो जाती हू, बातें करते करते चुप हो जाती हू तो सुनना पडता है मैं 'मूडी हुई जा रही हू। लेकिन किसीको कैसे समझाऊ कि उदासी ही मुझे सच लगती है, हसना ही झूठ लगता है। मिस्टर एड मिसेज देसाई की एकमात्र लाडली को आखिर कमी किस चीज की है जो वह उदास हो। सभी यह कहते से प्रतीत होते हैं। और मेरे पास भी शब्द नहीं है कि मैं समझा पाऊ, मुझे रात क्यो अकेली लगती हैं दिन क्या उदास हो उठते है क्या मैं हसते हसते उदास हो जाती हू, क्यो बातें करते करते चुप ।

कल मिटो क्लब मे मड फार इच अदर' कटेस्ट था। मम्मी और पापा जज थे। मम्मी के सावधानी से किए मेकअप ने उन्हे धमका दिया था। पापा ने भी नया सूट पहना था। टाई की नाट लगाती मम्मी का पापा ने 'किस' कर लिया था। मैं देख रही थी, पापा का 'किस मम्मी के कपोलो पर उचटकर रह गया था समा नहीं सका था। शायद उन्हे लगा हो कि पापा ने बेकार ही उनका पाउडर बिगाड दिया व अपना मेकअप ठीक करने लगी थीं।

डायस पर एक दूसरे के पार्श्व म बैठे मम्मी और पापा इतने सज रहे थे कि मिसेज मेहरा ने कह दिया, 'आज के इस कटेस्ट म तो आपको ही चुना जाना चाहिए मिस्टर एड मिसेज देसाई! वाकई 'मड फार ईच अदर' तो आप दोनो ही है।'

मम्मी शरमा-सी गइ। पापा गर्वित-से हो उठे। मैं ध्यान से दोनो को ही देख रही थी, मैंने पाया, वे दोनो अपनी आखो म अपने आपको ही देख रहे थे, गर्व से प्रसन्नता से! काश! व अपनी आखो मे एक-दूसरे को देखते, मेरे मन ने चाहा।

फक्शन देर से समाप्त हुआ। कार की चाबी मम्मी को देते पापा

बोले, 'डार्लिंग, आज कार तुम ही ड्राइव करो । मैं थक गया हूं सिर में भी दर्द है ।'

मम्मी का स्वर तेज हो गया, सिर में दर्द था तो शोफर को रोक लेते, उसे क्यों छुट्टी दे दी । मैं भी तो थकी हुई हूं ।'

पापा ने पीछे की सीट पर बैठकर ज़ोर से कार का दरवाज़ा बन्द कर लिया । मैं मम्मी के साथ आगे की सीट पर बैठ गई । मम्मी ने झटके से कार स्टार्ट कर दी । कार साठ मील की रफ्तार से दौड़ने लगी थी । अंधेरे में मम्मी का चेहरा स्पष्ट नहीं था । लेकिन मैं महसूस कर रही थी कि पिछली सीट पर सिगरेट फूंकते पापा और साठ मील की रफ्तार से कार ड्राइव करती मम्मी के चेहरे एक-से सख्त हो गए होंगे ।

'तुम विटामिन की टेबलेट्स ले रहे हो ?' सहसा मम्मी ने पूछा ।

'आप दे रही हैं ?'

पापा 'तुम' से 'आप' पर चढ़ गए थे । 'तुम' से 'आप' पापा के गुस्से का अन्दाज़ होता है मुझे मालूम है ।

घर लौटते-लौटते बारह बज गए । मम्मी और पापा ने सीढ़ियों पर ही मुझे किस कर लिया, गुड नाइट डार्लिंग गुड नाइट हनी ।' और उनके बेडरूम का दरवाजा बन्द हो गया ।

कपड़े चेंज करते मुझे लगने लगा कि आज ज़रूर भूकम्प आएगा और इस घर की सारी दीवारें गिर जाएंगी मेड फार ईच अदर' विद्रूप मुझे बुरी तरह डराने लगा था । मुझे नींद नहीं आ रही थी । सोचा देखूं मम्मी और पापा क्या कर रहे हैं ? उनके बेडरूम की एक खिड़की खुली रहती है, झांका तो 'डबल-बेड पर दोनों एक-दूसरे की ओर पीठ किए लेटे थे । मैं देखती रही, उनमें से जब एक करवट लेता तब दूसरा सोने का अभिनय करने लगता । मुझे रुलाई आने लगी जी चाहा कि दौड़कर मम्मी और पापा के पास जाऊं उनके रेशमी लिहाफ खींचकर फेंक दूं और चीखकर कह दूं कि आप दोनों जाग रहे हैं फिर सोने का नाटक क्यों कर रहे हैं पापा के सिर में दर्द है, मम्मी उनका सिर क्यों नहीं दबाने लगती ? पापा

क्या नहीं एक ही बेड पर साई मम्मी को इतने निकट खींच लेते कि सारी दूरियां मिट जाएं क्या नहीं क्या नहीं मुझे लगा की दीवारें नहीं मैं ही गिर पड़ूंगी मैं अपने बेडरूम में लौट आई और अपने रेशमी लिहाफ में धस गई 'मेड फार ईच अदर' मम्मी पापा मैं राकेश अंधेरे में सारे चेहरे विकृत होने लगे थे, मैंने उठकर रोशनी जला ली तिपाई पर मम्मी और पापा का फोटो मुस्करा रहा था एक मेड फार ईच अदर' मुस्कान मम्मी और पापा तो सो गए होंगे, लेकिन मैं सारी रात करवटें बदलती रह गई।

तपिश के बाद

बैंक की ड्यूटी समाप्त कर निकलती हू तो साढे चार बज जाते हैं। मुझे घर पहुचने की जल्दी रहती है,कहीं आनन्द आ न गए हो! टीटू भी तो साढे चार तक स्कूल से लौट आता है और पडोस के वर्मा जी के घर खेलता रहता है। आज टीटू बैंक एकाउटस के बीच दिन भर याद आता रहा। याद तो आनन्द भी आते रहे।

सवेरे सोकर उठने मे कुछ देर हो गई थी। और सवेरे का समय इतना कमा होता है कि कहीं हिलने की गुजाइश नही रहती। आनन्द को वेड टी देकर टीटू का तयार करना, खाना बनाना और बीच म स्वय तैयार होना। घडी की सुइया के साथ मैं भी घूमती रही हू। आज टीटू का नेकर प्रेस नही हो सका, शट ता प्रेम कर दी थी। नेकर प्रेस कर रही थी कि आनन्द बाथरूम मे चिल्लाने लगे 'सुमी जरा टावल देना और उस टेरेलिन शट म बटन टाक देना, आज वही शट पहननी है'

जी म आया कि कह दू 'सुना जी आज कोई दूसरी शट पहन लो। आज मुझे बहुत स काम हैं। लेकिन कह नहीं सकी। कम कहती? बात शट से बढकर जीवन की बात तक पहुच जाती है। आनन्द बतात लगत हैं कि मुझे काम करने के तरीके नही आत या मैं जानबूझकर उनकी अवहलना करना चाहती हू।

प्राय आसमान साफ रहता है कि एक छोटा सा काले मेघ का टुकडा उठता है और फिर देखने-देखत सारा आसमान काला हो जाता है। तूफान उठ आता है। बहुत डरती हू ऐसे तूफान स। अपन छोट-स घामले से बहुत मोह है मुझे। और जब भी ऐसा तूफान उठता है, म उस गौरया-सी कापन लगती हू जिसका घोसला बवण्डर म बार

बार उड़ उड़ जाता हो।

टीटू को जिना प्रेम की नेकर पहनाई तो वह रुआंसा हो उठा। 'टीटू बेटे, मम्मी को आज माफ कर दो, कल तुम्हारे सारे कपड़े प्रेस कर दूंगी। आज डैडी की शर्ट में बटन लगा दूं।'

टीटू अपनी नन्ही बांह मेरे गले में डाल देता है जैसे कह रहा हो, कोई बात नहीं मम्मी! मैं टीटू का मुंह चूम लेती हूं और उसे जल्दी जल्दी दाल चावल खिला देती हूं। छोटे-से टिफिन में रोटी साग रखकर उसके टिफिन बाक्स में रख रही होती हूं कि बस आ जाती है। टीटू टा टा' कहता दौड़ जाता है। टीटू की 'टा-टा' की मीठी प्रतिध्वनि में खोई मैं आनन्द की शर्ट में बटन टांकने लगती हूं।

आनन्द कपड़े पहनते हैं तब तक मैं भी नहा लेती हूं और दोनों का खाना साथ ही प्लेटों में लगा लेती हूं। बीच-बीच में आनन्द कहते हैं जरा कोट पहना दो, जरा रूमाल दे दो और इस जरा जरा' को पूरा करती मैं तनने लगती हूं। मन में बार-बार आता है क्या सारे कर्तव्य मेरे अकेले के ही हैं, आनन्द तो स्त्री पुरुष की समानता में विश्वास करते हैं तभी तो कमाऊ बीवी चाहते थे। फिर यह क्यों नहीं समझते कि मुझे भी काम पर जाना है और मेरे भी दो ही हाथ हैं।'

साथ खाना खाते मैं प्रतीक्षा करने लगती हूं कि आनन्द कोई मीठी बात कहेंगे। शायद गहरी नजर से मुझे एक बार देखेंगे या अपनी प्लेट से कुछ उठाकर मेरी प्लेट में डालकर कहेंगे, 'सुमी, यह मेरी ओर से' लेकिन इसके पहले कि मैं खाना समाप्त करूं, आनन्द खा चुकते हैं।

मैं चलने के पहले जूड़ा बांधकर पाउडर लगा रही थी कि आनन्द बैग उठाकर चल दिए। 'अच्छा बाय' सुमी! शाम को देर मत करना" और एक स्टीरियो 'बाय' को झेलती मैं जब दरवाजे में ताला बन्द करती हूं तब मेरा जी चाहने लगता है कि आज घर ही न लौटूं। जीवन के नीरस ढर्रे के बीच कुछ पलों की मिठास के लिए छटपटाता मन विद्रोह करने लगता है। न चाहने पर भी मैं सोचने

लगती हू आखिर मैं भी कमाती हू, फिर इस छटपटाहट का प्रतिकार क्यो न लू ?

आज दिन भर टीटू की 'टा टा' और आनन्द का 'बाय' कानो मे गूजता रहा। टीटू के भोले मुख के साथ आनन्द के घुघराले बाल भी याद आते रहे। विवाह के प्रारम्भिक दिनो मे जब मैं आनन्द के बालो मे अगुलिया फेरती थी, वह आखे मूद लेते थे, चेहरे पर ऐसी तृप्ति झलक जाती थी कि उस तृप्ति को पीती मैं भी आकण्ठ तृप्त हो उठती थी। लेकिन अब आनन्द ऐसा अवसर ही नही देते कि मै उनके बालो मे अगुलिया फेर सकू। रात होगी तो कहगे, 'मुझे नीद आ रही है, तुम भी सो जाओ।' और दिन होगा तो परिहास मे कहेगे, 'क्या खोज रही हो मेरे बालो मे ?' जी चाहता है कि कहू, 'तुम्हे खोज रही हू।' लेकिन फिर एक अव्यक्त मान से भरकर हट जाती हू। मेरी लम्बी-पतली अगुलियो का स्पर्श आज भी किसी भी पुरुष को पागल बना सकता है। अब यदि आनन्द इसे पाकर भी भूल गए हो तो मै ही बढकर अपने रूप का अपमान क्यो सहू ?

उस दिन मैंने नाभि दर्शना साडी बाधी थी। आनन्द की नजर पडी तो मुझे निकट खीचकर बोले, 'मेरी ही आखो मे रहो न सुमी, सबकी आखो मे क्या रहना चाहती हो ?" और मैंने तुरन्त साडी चेज कर ली थी। उस दिन सारे दिन आनन्द की भरी ही आखो मे रही मन मे सिहरती रही था। शाम को जब लौटकर आनन्द की पसन्द की साडी पहनी, कानो मे वे इअरिंग्ज भी पहने जिनसे सजे मेरे कानो को आनन्द कभी मुग्ध होकर चूम लेते थे। फिर आनन्द का इतजार करने लगी। आनन्द आए पलग पर फैंकते हुए बोले, क्या, आज क्या बात है बडी सजी हो ? आनन्द कपडे चेंज करके राजा की तरह अखबार देखने लगे। 'मेरी ही आखो मे रहो' वे भूल चुके थे। उस सज्जा को उतारते-उतारते मेरी आखें आसुओ से धुधली हो उठी। एक अतृप्ति का दश लिए सारी रात मै सपनो मे चौंकती रही।

बार-बार ऐसे क्षण आते हैं जब मेरा नारी मन समर्पण के फूल लिए आनन्द की ओर बढ़ता है, टकराकर बिखर जाता है। कभी एक

चुम्बन, एक दृष्टि, एक स्पर्श लेकिन अपनी व्यस्तताओं में फंसे आनन्द को फुरसत नहीं होती।

देह-सुख आनन्द मुझे भरपूर देते हैं, किन्तु वह देह सुख भी जैसे एक ढर्रा हो। मैं चाहती हूं कि इस ढर्रे से परे आनन्द मेरे निकट हों तन के ही नहीं, मन के स्तर पर बार-बार मुझमें सिमट आएं। लेकिन

बैंक की सीढ़ियां उतरते हुए मैं देखती हूं कि ठेले पर सब्जियां बिक रही हैं। आनन्द को करेले बहुत पसन्द हैं, मैं करेले खरीदने लगती हूं। जब पहली बार आनन्द ने मेरे बनाए करेले खाए थे, तब मेरे हाथ खींचकर चूम लिए थे। इन स्वादिष्ट करेलों के लिए प्यार, सुमी! करेलों को रूमाल में बांधकर बैग में रखते आनन्द का वह चुम्बन हाथों पर ताजा हो उठता है। करेले आनन्द को आज भी पसन्द हैं। *शायद आज करेलों के माध्यम से वे खोए क्षण फिर लौट आएं!* एक मीठी सिहरन मुझमें रेंगने लगती है। मैं सोचने लगती हूं आज करेले जी जान से बनाऊंगी।

मैं रिक्शा पर बैठने को ही थी कि सविता पारिख आ गई। सविता बी० ए० में मेरे साथ पढ़ती थी। अब एक फर्म में रिसेप्शनिस्ट है। बांह में चिकोटी काटती हुई सविता कहती है, हैलो, सुमी डार्लिंग, ये करेले किसके लिए हैं? अरे, तुम किसके लिए लोगी? उसी इन्श्योरेंस एजेन्ट के लिए न, जो तुम्हारा मियां है। लेकिन आज मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगी, चल कॉफी पिएं। अरे, चल न!' और सविता मुझसे पहले रिक्शे में बैठकर रिक्शे वाले से कहती है "कॉफी हाउस!"

मैं चकित होकर घड़ी देखती हूं आनन्द आ गए होंगे। नाराज होंगे। कितनी बार उनसे कहा कि एक ताली अपने पास भी रखो। लेकिन आनन्द मानते नहीं, कहते हैं खो जाएगी। और बस भी मुझे बैंक के बाद पांच बजे तक घर आ ही जाना चाहिए। उन्मुक्त सविता की बगल में बैठी मैं अपने बन्धनों के अहसास से खिन्न होने लगती हूं। आज मैं भी आराम से घर लौटूंगी, आखिर मेरे भी कुछ अधिकार हैं!

रिक्शे म मुझसे सटकर बैठी सविता के कधा तक कटे लहराते बाल मेरे कधो पर भी झूले आ रहे हैं। कटे उडते बालों के साथ उडती फिरती सविता की तुलना मे मुझे अपना बधा जूडा एक बधन-सा असह्य लगने लगता है। जी चाहता है कि रास्त म ही किसी हेअर ड्रेसर के यहा उतर जाऊ और अपने इन लम्बे केशो का बधन काट फेंकू। लेकिन केश काट फेंकने से ही क्या होगा ? उन ब धनो का क्या होगा जो मेरे नारी मन की अपनी ही विवशताए हैं।

काफी का एक गहरा घूट भरती हुइ सविता हसती है "और सुना मुमी क्या ठाठ है ? वही कोल्हू के बैल के ठाठ न ! दिन भर बैंक की नौकरी करती है रात भर मिया की। मैं मजे मे हू। आजकल मेरा तीसरा इश्क चल रहा है और वह अशिक कहता है कि उसे मेरी इस नाक से प्यार है " सविता इतनी जार स हसती है कि मैं चौक जाती हू।

काफी मुझे बस्वाद कडवी लगती है। कॉफी के प्याले मे आनन्द का चेहरा मुझे घूरन लगता है। मैं सविता की आखो मे देखती हू "सच बता सविता क्या तेरा मन और कुछ नही चाहता ?"

सविता के मुख पर काली छाया-सी घिर आती है। मैं जानती हू सविता को इस काली छाया का अहसास है तभी न। वह ओरजार से हस पडती है, 'मन मन, मन अरी पगली मन वम कुछ नही, केवल जिस्म बनकर देख। दखती नही तू ऐसा परी सा रूप लिए करेले खरीदती रहती है और मैं यह पकौडे सी नाक लिए अपने उस तीसरे मजनू के साथ यूरोप जाने वाली हू घूमन।

सविता वनिटी बग से पाउडर का डिब्बा निकालकर अपनी नाक पर पाउडर लगाने लगती है। हम दोनो हसने लगती हैं, जस एक-दूसरे पर। लेकिन मुझे लगता है कि हम दाना अपने आप पर ही हसती रही हैं, एक ऐसी हसी, जिसकी आख म आसू हात हैं।

घर से कुछ दूर ही मैं रिक्शा छोड देती हू और पैदल घर तक आती हू। मुझे रिक्शे से आता देख आनन्द की भौह तन जाती है। 'क्या जरूरत है पसे वेस्ट करने की जब म बस से आता हू तो

तुम क्या नहीं ?" वह कहते है। ऐसे क्षणों मे मेरा मन भीतर तक आहत हो उठता है। 'म आ सकता हू तो तुम क्या नहीं मर कानो म किसी चोट-सा वजन लगता है। काश आनन्द कहते, 'सुनो, तुम रिक्शे से ही आया करो मेरा क्या मैं तो किसी तरह भी आ सकता हू लेकिन तुम कोमल हो थक जाती होगी

याद आता है आनन्द स परिचय के दिनों म हम बसो मे अक्सर मिलते थ। और भीड क बीच अपनी सीट मुझे देकर खडे आनन्द को देखती म अपना हृदय हार बैठी थी। जब रिक्शे म कुछ 'वेस्ट' हो, इतन समथ हम है लेकिन आनन्द मेरी कोमल असमर्थता को आहत किए जाते है।

घर पहुचती हू तो छह बज चुके थ। आनन्द कठिन चेहरा लिए फ्लट के सामने गलरी म टहल रहे हैं। स्कूल बाक्स पर बैठा टीटू पापा का तमतमाया चेहरा देखकर रुआसा हो उठा है। म ताला खोलती हू टीटू दौडकर मुझसे लिपट जाता है, मम्मी भूख लगी है।" म उसे गोद म उठा लती हू तभी आनन्द का सख्त स्वर गूजता है, 'कितने बजे है ?"

टीटू को गोद मे लेती तरल होती मैं कठोर हो उठती हू 'छह बजने म पाच मिनट हैं। क्या हुआ यदि एक दिन देर हो गई ?'

टीटू को दूध पिलाती म देखती हू कि आनन्द का चेहरा क्रोध से काला पडने लगा है। अब काले मेघ का यह टुकडा देखते देखते सारे आसमान पर छा जाएगा। अब फिर तूफान उठेगा। म गोरैया-सी कापने लगती हू लेकिन आज म भी नहीं झुकूगी।

आनन्द जाते है "पिक्चर चलोगी ?'

मेरा मन नहीं है' मैं कहती हू। मैं करेले छील रही हू। आनन्द मेरे सामने खडे आग्नेय दृष्टि से मुझे घूर रहे हैं। करेले छीलते मेरे हाथो मे बरसो पहले का एक चुम्बन थरथराने लगता है। जी चाहता है कि सारा मान-अभिमान छोडकर आनन्द स लिपट जाऊ। उनके शुष्क मुख को चुम्बनो से सिक्त कर दू। उनसे कहू कि वह भी सब कुछ भूलकर मुझे बाहो म समेट लें। लेकिन आहत मन

चोट खाई नागिन-सा फन काढकर खडा हो जाता है, मेरा उजला चेहरा भी आवेश से काला पडने लगता है।

क्या समझने लगी हो अपने आपको ? बहुत अभिमान हो गया है अपने कमाने का ! यह मत भूलो कि मैं पल भर में तुम्हें ठुकरा सकता हूं " आनन्द के शब्द हृदय पर हथौडे से पडते हैं। भीतर का सब कुछ खड-खड होकर बिखरने लगता है।

'हां कमाती तो हूं और इसपर यदि मुझे अभिमान भी हो तो गलत क्या है ?' मैं चाहने लगती हूं कि इस क्षण आनन्द को भी वैसा ही आहत करूं जैसा वह मुझे करते रहे हैं। चोट खाई नागिन-सी मैं ही उठती हूं। एक यत्रणा से छटपटाता मन यत्रणा के प्रतिकार के लिए पागल हो उठता है।

जबान लडाती है आनन्द मुझे तडातड पीटने लगते हैं। कोने में सहमा सा खडा टीटू दौडकर मुझसे लिपट जाता है जार जार से रोने लगता है। मैं करेले का बर्तन उठाकर फेंक देती हूं। टीटू को घसीटती लाकर बेड पर पटक देती हूं। एक पागल आवेश में अपने कपडे अटची में भरने लगती हूं। नहीं, नहीं रहना है मुझे पल भर भी यहां। अब इन्हें भी बता दूं कि मैं क्या हूं '

यत्रणा की भीषणता में मैं होश खो बैठती हूं। आनन्द के प्रति घृणा से मेरा रोम रोम जलने लगता है। बैंक के मनेजर विधुर हैं उनकी आखो मे अपनी अभ्यर्थना कई बार देख चुकी हूं। यदि केवल मैं चाहूं तो यह अभ्यर्थना सम्बध में बदल सकती है। मनेजर कन्ने आनन्द मेरे चारो ओर योन गोल वृत्त में चक्कर काटने लगते हैं।

मुझे चक्कर आने लगते हैं। मैं फर्श पर ही लुढक जाती हूं। यत्रणा आखो मे आसू बनकर बहने लगती है। एक अव्यक्त चीत्कार कठ मे घुटने लगता है मास रुकने लगती है। लगता है मैं कुछ नहीं हूं कहीं कुछ नहीं है क्या है ये सम्बन्ध जिनके पीछे पागल मृग सा दौडता मन बार बार आहत होता है। आनन्द में टीटू में अधेरे कमरे में आखें मूदकर अपने भीतर के अधकार में डूब

जाती हूं।

होश आता है तो पाती हूं आनन्द मेरे मुख पर पानी के छींटे दे रहे हैं, टीटू सिसक रहा है। "पापा मम्मी को क्या हो गया ? क्या हो गया मम्मी को ? मम्मी को मारो मत मम्मी को प्यार करो पापा पापा" टीटू का सिसकता स्वर कमरे में सिसकता सा मंडराने लगता है। मैं कराहकर आंखें फिर मूंद लेती हूं। आनन्द स्विच आन कर देते हैं कमरा बिजली के प्रकाश से भर उठता है।

प्यार जैसे मेरे और आनन्द के लिए टीटू के मुख से 'प्यार' शब्द एक नये अर्थ में प्रतिध्वनित हो उठता है।

आनन्द मुझपर झुकते हैं 'मुझे माफ कर दो मुमी, मैं पागल हो गया था' आनन्द का स्वर भीगा सा है।

मैं आंखें खोलती हूं—आनन्द का स्वर ही नहीं मुख भी भीगा सा है। 'मुझे माफ कर दो आनन्द मैं होश खो बैठी थी।' मैं बाहें फैला देती हूं। मेरी बाहों में बंधते आनन्द मुझे अपनी बाहों में समेट लेते हैं।

टीटू, आओ मम्मी को प्यार करो बेटे, आनन्द कहते हैं और प्यार करने लगते हैं। टीटू झट से मेरा बायां कपोल चूमता है फिर ताली बजाकर हंसने लगता है। उसके अबोध मुख पर वही तृप्ति है जो कभी आनन्द के मुख पर होती थी।

मैं पूरी कोशिश करूंगी कि फिर ऐसा तूफान न उठे—मैं अपने आपसे एक वादा करती हूं। आनन्द अभी भी मुझपर झुके हुए हैं। ऐसा ही कोई वादा वह अपने आप से कर रहे होंगे—मैं जानती हूं।

दिन भर की तपन के बाद हरसिंगार की गन्ध खिड़की की राह कमरे में उतरने लगी है—धीरे धीरे।

मासूम

मेरी सहेली उस स्टेशन पर उतर गई थी। अब मैं कूप मे अकेली थी। मुझे भी दो स्टेशन बाद उतर जाना था। प्लेटफाम पर बडी चहल पहल थी। डिब्बे म उस शोर को सुनती, उस भीड को देखती मैं दाशनिक' हो उठी था। यह टन का सफर मुझे अक्सर गम्भीर बना जाता है लगता है, यह जिन्दगी भी तो एक सफर है। यात्री चढते है, उतर जात हैं। कभी भीड हो जाती है, कभी कोई अकेला रह जाता। और, गाडी है कि चलती जाती है, निरन्तर। एक गहरी नि श्वास उमडकर मेर होठा तक आई, फिर भीतर लौट गई एस ही कितना कुछ उमडता है, लौट जाता है, सागर म उठत ज्वार की तरह। ज्वार कुछ क्षणा के लिए किनारे की सीमा लाघ ल, फिर भी तो उसे लौट ही जाना है।

गाडी सरकने लगी थी कि कोई जल्दी स दरवाजा खोलकर कम्पाटमट म आ गया। देखा, कीमती सूट पहने, चश्मा लगाए हाथ मे अटची लटकाए कोई थे। व्यक्तित्व सम्भ्रात था अत मेरे होठा तक आई डाट भी लौट गई। वह चश्मा उतारकर पसीना पोछने लगे थे। शायद तब तक उन्हाने मुझे देखा नही था।

पसीना पोछकर वह रूमाल जेब म रख रहे थ कि मैं चौक गई, अरे, यह ता सौमित्र हैं!

गो आप तुम '' मैं लडखडा गई थी।

उन्हाने मुझे पल भर ध्यान से देखा फिर जार स हस पड 'एड इज दट यू अपर्णा अप ?'

हा, ठीक सौमित्र ही थे। वह चेहरा दूसरा हो सकता था, किन्तु वह गजती हसी दूसरी नहीं हा सकती थी। वह गूजती हसी सौमित्र

की पहचान थी। इसी हँसी ने मुझे कभी उनसे बाँध दिया था।

'अरे बाबा, तुम तो बिलकुल गोलगप्पा हो गई हो! तुम्हारे झकाझक काम्प्लेक्शन के बैकग्राउण्ड में चमकते इस तुम्हारे काले तिल ने तुम्हारी पहचान करा दी, वरना सच, तुम्हें पहचानना मुश्किल था।' सौमित्र ने हँसते-हँसते कहा।

'और तुम क्या कम खाम हो गए हो जो मुझे नजर लगा रहे हो!' मैं सहज हो गई थी। सौमित्र का वजन बीस पौंड तो जरूर बढ़ा होगा, मैं सोच रही थी।

लगभग दस साल के बाद हम एक दूसरे के सामने खड़े थे, सौमित्र और मैं। कभी हमने जीवन भर साथ रहने के सपने देखे थे।

सौमित्र के वजन के बारे में सोचते वह सौमित्र मेरी आँखों में कौंध गया जो बैडमिण्टन का चैम्पियन था। मैं कभी-कभी उससे खेला करती थी। उसके और मेरे पापा मित्र थे और हम बचपन से एक दूसरे को जानते थे।

उस दिन गेम में सौमित्र मुझसे हार गया था, शायद जानबूझकर। फिर सहसा मेरा हाथ पकड़कर पूछ बैठा था 'अपू, जिन्दगी का गेम भी मेरे साथ खेलना पसन्द करोगी?'

'मैं क्या जानूँ, पापा से पूछो न!' मैं कानों तक लाल होती दौड़ गई थी। सौमित्र हँसता रह गया था। उस हँसी की गूँज को एकान्त में सुनते ही मेरे कान बार-बार लाल होते रहे। मेरे कानों को उस क्षण की प्रतीक्षा थी, जब सौमित्र का प्रस्ताव, पापा की स्वीकृति बनकर मेरे पास पहुँचेगा!

किन्तु, वह क्षण कभी आया नहीं। एक दिन सहसा सुना कि सौमित्र इंग्लैंड जा रहा है। और फिर, एक दिन सहसा सुना कि सौमित्र ने इंग्लैंड में ही एक प्रवासी भारतीय की बेटी से शादी कर ली है!

मैं पीछे छूटे सौमित्र के बारे में सोचती खड़ी रह गई थी। सामने खड़े सौमित्र हँसते कह रहे थे 'अरे, बैठो तो अपर्णा, या मुझे भी खड़ा ही रखोगी!'

हम एक ही सीट पर दूर दूर बैठ गए।

लेकिन कहना पडेगा कि यू आर स्टिल वेरी चार्मिंग !' सौमित्र न शायद सहज होने के लिए कहा। स्वर म कोई कम्पन न था। हो भी कैसे सकता था ? ऐसे कम्पना की उम्र ता हम बहुत पीछे छोड आए थे। हा, एक समय होता है जब हवाओ म खुशबू घुल जाती है फिर वह खुशबू जान कब, कहा खा जाती है ! और हवा सिर्फ हवा रह जाती है !

दस साल बाद, कम्पाटमट के एकात म मैं और सौमित्र आमने-सामने थ और हमार गिद हवा बिलकुल सामाय थी, सहज। सौमित्र न मेर सौदय की अभ्यथना भी की थी, चार्मिंग' कहा था। लेकिन मेरे कपोलो का तापमान बिलकुल सामाय बना रहा। न कपालो पर कोई रग बरसा, न कोई उष्णता दौडी। हा पलक पल भर के लिए झुकी फिर मैं सौमित्र की आखा म देखने लगी, ऐस ही जसे हम किसीकी भी आखा मे देखत है। मन म उठत हल्क से आलोडन को दबाती मैं उस सौमित्र का जिक्र भी नही करना चाहती थी, जा पीछे छूट गया था। हवा की वह खुशबू भी तो पीछे छूट गइ थी, स्वर का वह कम्पन भी ! अब सब कुछ सामाय था, इस ऐसा ही रहना भी चाहिए, मैं स्वय से कह रही थी।

'मे आई स्मोक ?' सौमित्र ने सिगरेट केस निकाल लिया था और बड शिष्टाचार से मेरी अनुमति माग रहे थे।

'ओह अवश्य !' मुझे कहना ही था। देवेश, मेरे पति भी ता एसे ही इजाजत मागते हैं। मुझे देवेश याद आ गए। सौमित्र को तुलना मे इक्कीस ही बैठेंगे, हर दष्टि से। सौमित्र सावले हैं, वह गोरे हैं। सौमित्र बैडमिण्टन मे चम्पियन थे देवेश डी० लिट हैं। सौमित्र का व्यक्तित्व एक खिलाडी का रहा है ता देवश का मेधावी। फिर दवेश ने मुझे वह सब भरपूर दिया है कि मैं किसी भी सौमित्र को भुला सकू। इन क्षणो सौमित्र के सामने बठी मैं देवेश के ध्यान म सच ही भीग गई थी। सुनती आई थी कि प्रथम प्रेम को भूलना कठिन होता है और उसकी स्मृति जीवन भर किसी प्रेतछाया-सी

'हाट' करती है। लेकिन देवश का प्रेम मुझे उस प्रेतछाया से मुक्त कर चुका था। सौमित्र को सामने पाकर भी जब उसे प्रेतछाया ने मुझे स्पश नहीं किया तो मुझ देवश क साथ स्वय पर भी गव हो आया। उन क्षणों में किसी अतप्ति म डूब उतर नहीं रही थी वरन एक तप्ति म भीग रही थी।

सौमित्र सिगरेट पीने लग थ। हल्के से धुए के नन्ह नन्ह बादल हमारे बीच उडने लगे थ। उस धुए की गध कसैली ही थी। देवश धूम्रपान करत ह तो प्राय मुझ वह ग ध मीठी सी लगती है, शायद देवेश की वह ग ध मेरी होती है, इसलिए न!

शायद मेर चेहर पर कोइ तिक्तता का भाव उभर आया था। सौमित्र ने सहसा सिगरेट बुझा दी, शायद तुम डिस्टर्ब हो रही हो!

नहीं तो। तुम पी लत। मैंन कहा। सौमित्र स हटकर मेरी दष्टि दौडती ट्रेन के सामन स प्रात पल बदलत दश्यो को दखन लगी, पड खेत पहाड साझ क रगो म नहाती धरती उन रगो से गुजरता आकाश।

गाडी दौड रही थी। सूरज डूबन लगा थी। पक्षिया क झुड अधेरे उजाले की सीमा रखा को लाघते उडे जा रह थे। एक और दिन डूब रहा था।

सौमित्र पता नहीं क्या सोच रह थे! वह भी मेरी ओर नहीं खिडकी के बाहर शायद उसी डूबत दिन को देख रहे थे जो हमारे बीच डूब रहा था। इस डूबत दिन क अहसास के साथ क्या इन्हें मेरा भी कोई अहसास है? मन ने धीर स मुझस पूछा।

और कसी हो अपर्णा? जिन्दगी तुम्हारे साथ या तुम जिन्दगी के साथ—कसी चल रहा हो?' सौमित्र मेरी ओर दखत हुए पूछ रहे थे। उन आखो म मैंने किसी विगत को टटोलना चाहा, लेकिन उन आखो म वतमान ही था, कोइ विगत नहीं।

'फाइन वेरी फाइन!' मैंने शब्दो पर जोर देकर कहा। मैं चाहने लगी थी कि सौमित्र स कोई बदला ले सकू उस अपमान का जो वह अनायास ही मेरा कर गए थे। सौमित्र भी देख लें कि मुझे

देवश मिल गए हैं और सौमित्र को खान का कोई दुख मुझे नहीं है, रचमात्र भी नहीं।

निश्चय ही तुम सुख स हो, वह तो तुम्हे दखकर ही लगता है। वरना नाइटीन सिक्स्टी की मकुमारी तन्वगी अपर्णा राय नाइटीन सेवण्टी की अपर्णा ' सौमित्र रुक गए।

'अब अपर्णा सान्याल ! मैंने फिर जोर देकर कहा। मर स्वर म दप था। क्या सौमित्र इसे लक्षित कर सकगे ?

हा, अपर्णा सान्याल होते होते बिलकुल रसगुल्ला हो जाएगी, यह कौन सोच सकता था ! सौमित्र ने वाक्य पूरा किया। हम पडे। उसे हँसी की किरचें कम्पाटमट भर म बिखर गइ शायद मेरे उनके बीच कहीं कुछ टूटा था शीश जसा कुछ लेकिन मैं किसी चुभन को नहीं स्वीकारूगी, मेरा निश्चय था। सौमित्र भी तो उस चुभन को नकारते रहे हैं। इस क्षण भी नकार रहे हैं। यदि वह सबल ह तो मैं भी दुर्बल नहीं। मैं सीधे सौमित्र की आखो म देख रही थी। वह भी मुझे ही देख रहे थे। शायद अपर्णा राय उन्हे याद आ गई थी या शायद वह केवल अपर्णा सान्याल को ही देख रहे थे। मैंने सौमित्र म किसी कम्पन को टटोला, हवा मे किसी खुशबू को छूना चाहा, लेकिन नहीं, सब कुछ सामान्य था।

'मिस्टर सान्याल कसे है ?' कन्व माइ रिगाड्स टू हिम। सौमित्र निश्चय ही केवल अपर्णा सान्याल को देख रहे थे।

वह स्टेशन पर मुझे रिसीव करने आएग, मिल लेना। वसे वे अच्छे ह बहुत अच्छे जितना कि कोई हो सकता है।' मेरा मन बदला लेने के लिए आतुर हो उठा था। मुझस प्रपोज करके सौमित्र न मुझे सहसा प्रतीक्षा करते छोड दिया था और मुडकर भी नहीं देखा था कि मैं कहा खडी रह गई हू। पता नहीं मुडकर न देखने की कोई यातना सौमित्र ने झेली थी या नहीं किन्तु प्रतीक्षा करने की वह यातना मैंने अवश्य झेली थी। और यदि देवश जैसा कोई न मिलता तो शायद वह यातना मुझे मार देती।

जब तुम इतने सुख से हो तब निश्चय ही मिस्टर सान्याल बहुत

अच्छे व्यक्ति होंगे। सुख देना सहज नहीं होता नहीं होता न !''
सौमित्र पता नहीं मुझसे कौन सा उत्तर चाहते थे !

साझ अधियारे में बदल रही थी। कम्पार्टमेंट की बत्तियां जल गई थीं। एक स्टेशन आ गया था, जहां ट्रेन को केवल पांच मिनट रुकना था। दूसरा स्टेशन मेरा था जहां मुझे उतरना था।

'कुछ लोगी, चाय या कोल्ड ?' सौमित्र निहायत नम्रता से पूछ रहे थे।

कुछ नहीं, थैंक्स !'' मैं उदास हो गई थी। बाहर का घिरता अंधकार जैसे मेरे भीतर उतरने लगा था सौमित्र के साथ के बावजूद मैं बेहद अकेलापन अनुभव करने लगी थी अगले स्टेशन पर ही तो मुझे उतर जाना है बस कुछ देर और !

'और तुम कैसे हो ? तुम्हारी मिसेज बच्चे ?' मैंने पूछा। इसके अतिरिक्त पूछने के लिए मेरे पास भी शायद कुछ नहीं था।

यदि मैं भी कहूं, फाइन, वेरी फाइन ! तो शायद तुम सोचोगी कि मैं तुम्हारी नकल कर रहा हूं।' सौमित्र ने रूमाल निकाल लिया था। हवा के एक तेज झोंके से धूल उड आई थी और हमारे चेहरे उस धूल से बच नहीं सके थे कहां बच पाता है कोई भी चेहरा किसी न किसी धूल से ? मेरी उदासी को वह धूल गहरा कर गई। मुझे भी अपना रूमाल वैनिटी बैग में से निकालना पडा।

'दो बच्चे हैं और मिसेज मानो कि सीमा बहुत अच्छी है, तुमसे कुछ ज्यादा ही !'' सौमित्र रूमाल से चश्मा पोछ रहे थे। उनकी आखें नीची थीं, अतः मैं देख नहीं सकी कि जो वह कह रहे थे उसे उनकी आत्मा ने भी कहा है या नहीं ? मजाक करने की तो सौमित्र की आदत रही है मैं व्यर्थ ही होंठों के मजाक को मन में क्या जोड रही हूं—मैंने स्वयं को समझाया।

तो क्या सौमित्र को कुछ भी याद नहीं है किसी भी खेल की कोई भी बात ? मेरा सारा मन सहसा कातर हो उठा। क्या सच में वह सब खेल ही था ? एक निष्ठुर खेल और उस खेल में मुझे तोडकर सौमित्र सच में मुझे किसी खिलौने सा ही भूल गए थे ?

लेकिन नही म टूटी कहा थी ? मेरा मन दुवल होते-होते, दवेश का ध्यान कर सवल हो उठा, सवल और तृप्त ।

मेरा मन भी कोई मजाक करने को हो आया, 'जानते हो सौमित्र, मेरे एक बेटी है और मन उसका नाम सुमित्रा रखा है, तुम्हे याद रखने के लिए ?' मैं उद्धत हो उठी। चाह रही थी कि कोई नश्तर सौमित्र को चुभा दू वह नश्तर याद दिलाने के लिए जो वह मुझे चुभा गए थे।

मुझे याद रखने के लिए ! वण्डर !' सौमित्र अटटहास कर उठे। वह अटटहास मुझे ही आहत कर गया। शायद सौमित्र का कोई नश्तर नही काट सकेगा या शायद सौमित्र के लिए मैं वह हू ही नही, जिसके नश्तर का कोई अथ होता है। पल भर के लिए मेरा अपना ही चेहरा मेरी आखो म कौंधा। मेरी आकृति पर तृप्ति की सारी सुचिक्कनता के बावजूद मेरी खूबसूरत आखो के गिद स्याह घेरे हैं य घेरे गहरे होते जा रहे ह जिन्दगी म बहुत कुछ मिलने पर भी जो 'कुछ' नही मिला वह शायद इन्ही स्याह घेरो मे सिमट आया है ।

सौमित्र की आखो के गिद भी स्याह घरे ह। बीस पौंड वजन अवश्य बढा होगा, लेकिन ये घेरे फिर भी हैं। क्या सौमित्र ने भी बहुत कुछ पाकर भी 'कुछ' नही पाया है ? कभी कभी यह मन का चानक भी कितना बावला हो उठता है कि अविरल रसधार सी वर्षा को नकारता स्वाति की एक बूद के लिए तडपने लगता है ! सौमित्र से मुझे और कुछ नही चाहिए था। बल्कि म सतक थी कि कही वह असयमित न हो उठे। सौमित्र की आखो स कोई लाभ नही झाका था। किसी सुन्दर नारी-देह के लिए यह लोभ पुरुष की आखो म अचानक ही जाग जाता है किसी हिंस्र पशु की आखो म शिकार को देखते ही उछल आई पाशविकता सा ! यह पाशविकता शायद पुरुष की कमजोरी होती है ! सौमित्र की आखो म कोई कमजोरी नही उभरी थी उन आखो का वह सयम मुझे बहुत अच्छा लगा था—ऐसा ही सयम तो दवेश की आखो म भी है।

बाहर तेज हवा चलने लगी थी। गाडी की गति भी तीव्र हो उठी थी। सौमित्र का अट्टहास बावले होते मन के चातक के मुख पर थप्पड-सा पड गया था। सौमित्र होश म है फिर मैं ही क्यो होश खो रही हू हवा के तेज झाका से ढेर सारी धूल आ गई थी और हमारे चेहरे धूल से नहा गए थे। चलू मुह धो लू मेक-अप भी कर लू देवेश मुझे सदा सवरी देखना चाहते थे और वह स्टेशन पर रिसीव करने अवश्य आएग अपने आपमे कहती मैं उठ गई।

शीशे के सामने मुह धोकर पाउडर लगाते लिपस्टिक होठो पर फेरने मैंने धूल के सारे अहसास को धो पोछ ही नही दिया, उसे सुगधित और रजित भी कर दिया। हा, यही तो है मेरा चेहरा, खूबसूरत, सुगधित रजित ! और इस मुख के पाश्व मे है देवेश की आकृति, आखो मे अभ्यथना, होठो पर चुम्बन लिए ! मुझे और क्या चाहिए ? मैं अपने पूर दर्पित हाश म आ गई।

मन दरवाजा जरा-सा खाला था कि देखा, सौमित्र चोर नजर स इधर-उधर देखत मेरा रूमाल फश स उठा रहे है उन्हान रूमाल उठाया, होठो से लगाया कोट के भीतर की जेब म रख लिया और फिर अखबार पढने लग।

मैं कुछ क्षण वही खडी रह गई फिर निकली तो देखा बाहर का अधेरा पिघलने लगा था भीतर कम्पाटमट म राशनी तेज हो गई थी हवा थम गई थी धूल भरी हवा म कही दूर से कोई खुशबू सी तर आई थी

सौमित्र नजरें गडाए अखबार पढे जा रहे थे। मैं सामान सहेजने लगी थी। अगले स्टेशन पर मुझे उतर जाना था और निश्चित था कि देवश आएग मुझ लेने के लिए।

हा, रूमाल उठाते सौमित्र का वह चेहरा, फूल की चोरी करते किसी बच्चे-सा मासूम था !

●●●

211079

मुद्रक दी सेंट्रल इलक्ट्रिक प्रैस, दिल्ली